प्रकरण : २

उस्ताद मौलाबक्ष

(१८३३-१८९६) का परिचय एवम् उनका सांगीतिक योगदान

प्रकरण : २.

उस्ताद मौलाबक्ष (१८३३-१८९६) का परिचय एवम् उनका सांगीतिक योगदान-

मुगलों एवं अंग्रेजों के शासन काल में हमारे भारतीय संगीत में कई उतार-चढ़ाव आए । वैसे भी संगीत एक परिवर्तनशील कला है; जैसे-जैसे मानव का शारीरिक एवं बौद्धिक विकास होता गया, वैसे-वैसे संगीत का स्वरुप भी बदलता गया । भारत देश पर बार-बार विदेशी आक्रमणे हुए । सदियों तक विदेशियों ने भारत पर शासन किया । विदेशियों के शासन काल में उनकी संस्कृति, सभ्यता, भाषा एवं कलाओं का भारतीय संगीत पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

प्राचीन काल में उस समय की संस्कृति के अनुकूल विभिन्न सांगीतिक प्रकारों का जन्म हुआ । भारतीय संगीत में मार्गी संगीत, साम-गान, ग्राम-मूर्च्छना, जाति गायन, ध्रुपद इत्यादि सांगीतिक प्रकार प्राचीन काल से ही प्रचलित थे । मुगलों के शासन काल में उनकी संस्कृति, सभ्यता एवं भाषा इत्यादि के प्रभाव से भारतीय राग संगीत में कई नये संगीत प्रकारों का जन्म हुआ । ख्याल, ठुमरी, टप्पा, तराना जैसे संगीत प्रकारों तथा सितार, तबला, सरोद, सारंगी जैसे वाद्यों का भी जन्म मुगल काल में हुआ था । ठीक उसी प्रकार कालानुसार अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय संगीत को आधुनिक एवं वैज्ञानिक बनाने की दिशा में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयत्न किये गये ।

राग संगीत, शुद्ध संगीत, अभिजात संगीत, आध्यात्मिक संगीत, उच्चांग संगीत इत्यादि विभिन्न नामों से पहचाने जाने वाले भारतीय संगीत को अंग्रेजों के शासन काल में एक नया नाम प्राप्त हुआ, और वह था "भारतीय शास्त्रीय संगीत" । जो कि अंग्रेजों के पाश्चात्य संगीत के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले "वेस्टर्न क्लासिकल म्युजिक" का अनुवाद मात्र ही था ।

हारमोनियम, वायोलिन जैसे पाश्चात्य वाद्यों का स्वीकार करके उनका प्रयोग भारतीय संगीत में किया जाने लगा । स्वरलिपि, सामुहिक संस्थागत शिक्षा पद्धति, वाद्य-वृंद, ग्रामोफोन रेकोर्ड इत्यादि का प्रचलन भी अंग्रेजों के शासन काल में ही आविष्कृत हुआ ।

अंग्रेजों के दो सौ वर्ष के शासन काल में हमारे भारतीय समाज पर उसका अच्छा और बुरा दोनों प्रकार की बातों का गहरा प्रभाव पड़ा था । हमारी वर्तमान समय की संस्कृति, साहित्य, न्याय व्यवस्था, चिकित्सा क्षेत्र, शिक्षा, खेल, स्थापत्य, जीवनशैली इत्यादि को देखने से यह बात हमें अच्छी तरह से समझ में आ सकती है कि हमारी भारतीय सभ्यता पर अंग्रेजी सभ्यता का कितना गहरा असर हुआ है । किन्तु उस समय भारतीय संगीत की स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी । इन विपरीत परिस्थितियों में भी भारत के कई संगीत प्रेमी राजा, बादशाहों, रईसों ने भारतीय संगीत को सुरक्षीत रखने में अपना योगदान दिया । उन्होंने अपने दरबारों, महलों, रजवाडों में संगीतकारों को कई पीढ़ियों तक आश्रय दिया एवं आजिविका उपलब्ध करवाई । उनका यह कार्य अपने मनोरंजन या दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए ही क्यों न हो ? उन्होंने संगीत का जतन किया और हमारे भारतीय संगीत को लुप्त होने से बचाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय संगीत को उचित मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त न हो पाई थी, जिसके विभिन्न कारण दृष्टिगोचर होते हैं-

१. भारत में अंग्रेजों का आगमन केवल व्यापार करने के लिए ही हुआ था । उन्हें भारत के विकास एवं उसकी सभ्यता, संस्कृति को प्रोत्साहन देनें में विशेष रुचि नहीं थीं ।

२. अंग्रेज हमारे भारतीय राग संगीत से बिलकुल भी परिचित न थे। संगीत में प्रयुक्त होने वाली देशी भाषाओं को समझने में अंग्रेज असमर्थ थे।

३. संगीत के विभिन्न घरानों के कलाकारों में भारतीय संगीत में लिखित एवं प्रायोगिक शास्त्रों के संदर्भ में आपसी मतभेद पाये जाते थे; यह बात अंग्रेजों के लिए आश्चर्यजनक थी।

४. संगीत केवल घरानों तक ही सीमित था। कुछ मर्यादित लोग ही इस राग संगीत का आस्वाद ले सकते थे अथवा सीख सकते थे। समाज में रहने वाले जन साधारण के लिए संगीत सीखने-समझने के लिए उचित संस्थागत शिक्षा प्रणाली उपलब्ध नहीं थी।

५. जहाँ पाश्चात्य संगीत प्रगतिशील, अत्याधुनिक बनता जा रहा था एवं आंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान प्रस्थापित कर चुका था, वहीं भारतीय संगीत राष्ट्रीय कक्षा पर भी अपनी विशेष गरिमा स्थापित करने में असफल रहा था।

६. पाश्चात्य संगीत में स्वरलिपि, दस्तावेजी-करण, संगीत अभ्यास लक्षी शास्त्र, वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली इत्यादि विषयलक्षी कई शोध कार्य हुए थे। इस तरह के शोध कार्य भारतीय संगीत में दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे।

भारतीय संगीत आदिम और प्राथमिक कक्षा का संगीत है, जिसमें संगीत शिक्षा का कोई नियमित एवं सर्वमान्य ढाँचा नहीं है ; और ना ही उसमें स्वरलिपि है। यह प्रशिष्ट संगीत कुछ ही लोगों के लिए सीमित है ऐसा, प्रचार १९वीं सदी के दौरान अंग्रेज दुनिया भर में भारतीय संगीत के विषय में करते थे। उपर्युक्त कुछ प्रमुख कारणों की वजह से अंग्रेज भारतीय राग संगीत को अविकसित और अवैज्ञानिक मानते हुए उसकी अवहेलना करते थे। साथ-साथ भारतीय संगीत में

मुसलमान कलाकारों की बढ़ती संख्या, संगीत में बढ़ती शृंगारिकता और अंग्रेजों का सहयोग एवं प्रोत्साहन न मिलने से भारतीय राग संगीत का अस्तित्व बनाये रखना अत्यंत मुश्किल कार्य था । लोग शास्त्रीय संगीत को सीखने एवं जानने से परहेज करने लगे थे ।

इन विपरित परिस्थितियों में भी उस्ताद मौलाबक्ष ने अथक परिश्रम करके भारतीय शास्त्रीय संगीत शिक्षा को आधुनिक एवं वैज्ञानिक बनाते हुए इसे संपूर्ण स्वरुप प्रदान किया । भारतीय शास्त्रीय संगीत को न केवल राष्ट्रीय-आंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाई परंतु उसकी एक सुव्यवस्थित संगीत शिक्षा प्रणाली को स्थापित करके मौलाबक्ष ने इस प्राचीन भारतीय विद्या को अमरत्व प्रदान किया ।

भारतीय संगीत को राष्ट्रीय-आंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त करवाने की दिशा में १९वीं शताब्दी में कई ऐतिहासिक कार्य हुए, जिसके फलस्वरुप हम वर्तमान समय में हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत पर गर्व महसूस कर सकते हैं; इस दृष्टिकोण से आधुनिक युग में १९वीं शताब्दी को हम भारतीय संगीत का सुवर्णकाल कह सकते है; जिसमें देश के कई संगीत विद्वानों द्वारा संगीत को पुनःजागृत करके समाज में आदर-सम्मान प्राप्त करवाने की दिशा में सराहनीय कार्य किया गया । इन संगीत विद्वानों में उस्ताद मौलाबक्ष का नाम विशेष आदर सम्मान के साथ लिया जाता है ।

संगीतसृष्टि में उस्ताद मौलाबक्ष यह नाम काफी मशहूर है । आधुनिक संगीत में क्रान्ति लानेवाले दों प्रसिद्ध संगीतज्ञ-शास्त्रकार पं.विष्णुदिगंबर पलुस्कर एवं पं.विष्णुनारायण भातखंडे के कई वर्षो पहले ही बड़ौदा संगीत संस्थान के दरबारी गायक-वादक उस्ताद मौलाबक्ष ने संगीत के कई पहलुओं पर सराहनीय कार्य किया ।

इतिहासकार उस्ताद मौलाबक्ष को महान संगीतज्ञ के साथ-साथ एक ऐसी शख्सियत भी मानते हैं, जिन्होंने सबसे पहले भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वदेशी स्वरलिपि का अविष्कार किया एवं देश की सर्वप्रथम गायन-शाला की स्थापना एवं संचालन किया ।

मौलाबक्ष का संपूर्ण जीवन निःसदेह संगीत से जुडा हुआ था । आज से करीब १८५ साल पूर्व के उस्ताद मौलाबक्ष के सांगीतिक उपलब्धिीयों, सांगीतिक योगदान इत्यादि को जानना बेहद कठिन कार्य है । मौलाबक्ष के जीवन से जुड़ी अधिकतर जानकारियाँ मौखिक परंपरा के अंन्तर्गत ही पाई गई हैं । जो कुछ लिखित दस्तावेज है, वह भी उनके पारिवारिक सदस्यों, इतिहासकारों एवं शिष्यों द्वारा ही मौखिक परंपरा के अंन्तर्गत लिखी गई हैं ।

अधिकतर महान गायकों या वादकों का जीवन चरित्र, उनके शिष्य तथा परिवार द्वारा ही लिखे गए है । जीवन चरित्र लिखने का उद्देश्य काल्पनिक बातों को विराम देकर तथ्य को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना होता है । महान संगीतकारों के जीवन-चरित्र का चित्रण अधिकतर तथ्य एवं सत्य आधारित होता है । उनके जीवन चरित्र का हर पृष्ठ सोने की चमक जैसा चमकदार होता है । इस तरह की सांगीतिक एवं प्रचलित जानकारी पारंपरिक तौर से अधिकृत होते हुए इतिहास के किसी बन्धन से परे होती है ।

उस्ताद मौलाबक्ष का युग उनके जन्म- सन् १८३३ से उनके पौत्र अल्हादाद खान-ए-मौलाबक्ष पठाण की मृत्यु अर्थात् सन् १९७२ तक का माना जा सकता है । उनके बाद उनके सम्बन्धियों का सांगीतिक-सांस्कृतिक विरासत, रुदबा तथा ओहदा सब कुछ समाप्त हो गया था । इसके लिए आंतरिक एवं बाह्य दोनों परिस्थितियाँ जिम्मेदार थीं । किन्तु जिसकी तरफ किसी का भी ध्यान नहीं गया और वह थी "मौलाबक्ष के शिष्य एवं नाती "संगीतकार" हजरत इनायत

खान साहेब और उनके भाई अल्हादाद खान पठाण की हिन्दुस्तान में सन् १९२६ से १९७२ तक की अनुपस्थिति ।

कुछ चीजे ऐसी घटित हुईं, जो न चाहते हुए भी पूरे घराने को नष्ट कर गईं । फिर चाहे उनकी घातक कमजोरी कहें या कुछ और, लेकिन वही उनके "अशरफ राजकुल पवित्र आला-खानदान-ऐ-मौलाबक्ष के विनाश का कारण बना।"[१]

आगे हम संगीत के ऐसे प्रखर विद्वान, युगद्रष्टा, संगीतकार मौलाबक्ष को उनके जन्म से मृत्यु तक के सांगीतिक जीवन, योगदान इत्यादि को जानने का प्रयत्न करेंगे ।

२.१ उस्ताद मौलाबक्ष की पारिवारिक पृष्ठभूमि

यह एक रहस्य है, किन्तु सत्य है कि मौलाबक्ष के परिवार का उद्गम हिन्दू धर्म ही था । हिन्दू से मुस्लीम धर्म अंगीकार करने का कार्य मौलाबक्ष के परदादाजी द्वारा ही हुआ था । मौलाबक्ष के परदादा "हिन्दू ब्राहमण" थे । उनका गौत्र "व्यास" था । उन्हें "व्यासजी" या "ब्यासजी" नाम से भी संबोधित किया जाता था । इतिहासकार "वान बीक" के अनुसार उस समय में "ब्राहमण" किसी एक जाति या गोत्र से संबंधित नहीं, किन्तु सभी हिन्दूओं के लिए यह एक पर्यायवाची शब्द हो सकता है । यह भी हो सकता है कि मौलाबक्ष के परदादाजी का नाम ही "व्यासजी" रहा हो । शायद इसीलिए उन्हें किसी विशेष "गोत्र" या "जाति" से पहचानना मुश्किल है ।"[२]

व्यासजी का हिन्दू से मुस्लिम धर्म अंगीकार करने के पीछे का प्रमुख कारण उनकी पुत्री का मुगल संप्रदाय में शादी करना था । मुगलों को साधारणतः चार वर्गो में बाँटा जा सकता था । पहला अशरफ, जो भारत के खास मुस्लिमों में

से थे । बाकी सैयद, पठाण तथा शेख थे । कई वर्षों तक भारतीय मुस्लिम चाहे वो अप्रवासी हों या धर्मान्तरिय, हिन्दू लडकियों से शादी करते आये थे । इस तरह देखा जाय, तो मौलाबक्ष के दादाजी की पुत्री का मुगल संप्रदाय में शादी करना और उन्हें मुस्लिम धर्म अंगीकार करने के लिए आकर्षित होना एक छोटा-सा हादसा था । और इस तरह मौलाबक्ष के महान परदादाजी बनने का सौभाग्य उन्हें मिला । यही विचार मौलाबक्ष के पुत्र डॉ.ए.एम.पठाण की नेपाली पत्नी "अम्माहुजूर" के भी थे । जिन्होंने व्यास जी से अल्हादाद तक की पीढ़ियों के बारे में देखा सुना था ।"[३]

मौलाबक्ष के पूर्वज भिवानी, पंजाब के रहने वाले रईस जमीनदार थे । आर्थिक दृष्टि से संपन्न, समृद्ध, ठाटबाट, एशोआराम एवं मानसम्मान प्राप्त इस परिवार को समाज में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त थी ।

मौलाबक्ष के परदादाजी व्यासजी के पुत्र अनवर खान को संगीत में बेहद् रुचि थी । अच्छे गायक के रुप में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त थी । अनवर खान के दो पुत्र थे । घीसू खान तथा इमाम खान, दोनों का विवाह भी मुगल और पठाण वर्ग की कन्याओं से हुआ था । मौखिक परंपरा से यह माना जाता है कि मौलाबक्ष के दादाजी अनवर खान से ही परिवार में संगीत की परंपरा शुरु हुई थी । इसीलिये प्रोफेसर मिनार ने मौलाबक्ष को घरानेदार संगीतज्ञ की श्रेणी में रखा है । "[४]

मौलाबक्ष का जन्म सन् १८३३ में वर्तमान समय के राज्य हरियाणा के गाँव चिथर, जिला भिवानी में हुआ था । उनके बचपन का नाम शोले खान था, तीन साल की उम्र में ही उनके पिताश्री घिसू खान का देहांत हो चुका था । थोडे ही वर्षो में माँ का भी निधन हुआ । माँ-बाप न रहने से अनाथ शोले खान को उनके चाचा इमाम खान और उनकी पत्नी बीमा बी ने सँभाला और लालन पोषण कर बड़ा किया था ।"[५]

शोले खान को बचपन से ही घुड़सवारी, पहलवानी, कुस्ती, खेलों का बहुत शौक था। सेवाभावी एवं मिलनसार स्वभाव के शोले खान गाँव में आनेवाले परिचित या अपरिचित महेमानों की सेवा-मदद करने में हमेशा तत्पर रहते थे। किन्तु शोले खान के प्रारब्ध में कुछ और ही लिखा था। उनके जीवन में एक अजीब-सी घटना हुई; जिसके बाद शोले खान पहलवानी छोड़कर संगीत के मार्ग पर चल पड़े। जब वे १५ साल के थे, तब उनकी पहचान गाँव मे आनेवाले एक पवित्र तीर्थयात्री से हुई। इस सूफीवादी फकीर से उनकी अच्छी दोस्ती हो गई थी। शोले खान ने अन्दर की अनुराग-भावना से उस चिस्ती पंथ के फकीर की सेवासुश्रूषा की; फकीर शोले खान से बहुत प्रसन्न हुए। फकीर संगीत के माध्यम से अपने ईश्वर की प्रार्थना और भक्ति करना चाहते थे। उन्होंने अपने १५ साल के नन्हें दोस्त से कहा "मेरा मन गाना सुनना चाहता है" । क्या आप मेरे लिए गायेंगे ? बालक शोले खान ने कहा "मुझे गाना तो नहीं आता" । किन्तु, शेर की आवाज निकालना मुझे आता है। फिर भी में आपकी खुशी के लिए जितना हो सकेगा गाऊँगा। उनके गाने के बाद फकीर ने खुश होकर कहा, "इस धरती पर मैं एक गरीब, भटकता फकीर हूँ "। मैं आपको कोई धन नहीं दे पाऊँगा। पर मेरे अधिकार में धन की जगह आशीर्वाद के रुप में तूम्हें एक नया नाम देता हूँ। आज से आपका नाम होगा "मौलाबक्ष" यांनी "मालिक की देन", या "ईश्वर का उपहार" । इस नाम से आप दुनिया में पहचाने जाओगे और आपके गायन से आपको सम्मान प्राप्त होंगा। फकीर की बात शोले खान ने बड़े ध्यान से सुनी और उनसे आशीर्वाद लेकर आभार व्यक्त किया। फकीर की बात को शोले खान ने अपने मन में समा ली और उस दिन से उन्होंने अपना नाम शोले खान से बदलकर "मौलाबक्ष" रख लिया। जैसे उनका नया जन्म हुआ हो; उनके मन में संगीत सीखने के प्रति आतुरता बढ़ती गई। "[६]

२.२ उस्ताद मौलाबक्ष की संगीत शिक्षा

मौलाबक्ष के दादाजी अनवर खान बहुत अच्छे गायक थे । किन्तु यह भी सत्य है कि मौलाबक्ष किसी मशहूर संगीत घराने से नहीं थे । चिश्ती दरवेश की मुलाकात और आशीर्वाद के बाद मौलाबक्ष को ननिहाल में नानाजी अनवर खान से गायन और बीन सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।"[७]

नानाजी ने अपनी तीन साल की शिक्षा के पश्चात मौलाबक्ष से कहा कि अब वे संगीत की अग्रीम तालीम के लिए एक सच्चे, गुणी एवं समर्पित गुरु की खोज करें । किन्तु, उन दिनों में कोई भी कलाकार सरलता, स्नेह, सदभाव एवं मन से खुद की संगीत कला दूसरों को सिखाने के लिए आसानी से तैयार नहीं होता था । केवल अपने बाल-बच्चे या घर के सदस्यों को ही संगीत सीखाने की परंपरा थी । अगर घर का कोई व्यक्ति संगीत न सीख सके, तो कलाकार की कलाकारी उसकी मृत्यु के साथ खत्म हो जाती थी । बड़े कलाकार अपनी कला का आविष्कार कुछ चुने हुए खास मेहमानों के सामने ही पेश करते थे । अनजान लोगों की भीड़ में संगीत पेश करने या सिखाने का रिवाज नहीं था । केवल वरिष्ठ एवं घरानेदार कलाकारों तक सीमित इस संगीत कला को सीखना, सुनना एवं परखना किसी आम संगीत के विद्यार्थी के लिए काफी दुष्कर कार्य था । इन मुश्किल परिस्थितियों में मौलाबक्ष ने गुरु की खोज आरंभ कि । नाना अनवर खान, मौलाबक्ष के चाचा इमाम खान की अनुमती लेकर मौलाबक्ष के साथ गुरु की खोज में विविध शहरों कि यात्रा पर निकल पडे । गुरुकी खोज में मौलाबक्ष ने रतलाम, ग्वालियर, टोंक एवं काठीयावाड़ इत्यादि कई शहरों की यात्रा की । अंत में मौलाबक्ष बड़ौदा दरबार के प्रसिद्ध संगीतकार उस्ताद घसीट खान की ख्याती से प्रभावित होकर बड़ौदा पहुँचे और उस्ताद घसीट खान से ही संगीत विद्या अर्जित करने का संकल्प कर लिया ।"[८]

उस जमाने में बड़ौदा के घसीट खान नामक विद्वान कलाकार बड़े मशहूर एवं अमीर कलाकार माने जाते थे। किन्तु अपनी कला वे किसी को सिखाते नहीं थे। मौलाबक्ष उस्ताद घसीट खान के संगीत से काफी प्रभावित हुए थे और उनसे संगीत सीखने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने बड़ौदा रियासत की और प्रयाण किया था। जवान मौलाबक्ष के पास खाने रहने के लिए भी पैसे नहीं थे। फिर भी, मौलाबक्ष ने घसीट खान का गायन सुनने एवं सीखने का मन बना लिया और सोचने लगे कि घसीटखान के सामने जाएँ कैसे। मौलाबक्ष घसीट खान की हवेली के आसपास टहलने लगे। खुद के मिलनसार स्वभाव से उन्होंने जल्द ही घसीट खान के नौकर से जान पहचान बनाकर उसे अपना दोस्त बना लिया। नौकर के रहने कीं जगह घसीट खान के घर के पास ही थी। घसीट खान को नित्य रात को बारह बजे के बाद संगीत का रियाज करने कि आदत थी। मौलाबक्ष नौकर के घर जाने लगे और वहाँ से हर रात्रि को छिपकर घसीट खान का गाना सुनने लगे और उनके गायन की बारीकियों को ध्यान से सुनकर एकलव्य की भाँति संगीत सीखने लगे। रोजाना मौलाबक्ष उस नौकर के कमरे में जाने लगे। उस नौकर के साथ तरह-तरह की बातें करते तथा कहानियाँ सुनाते। घसीट खान के नौकर को अफीम के नशे कि आदत थी। नशे की आदत की वजह से, नौकर को मौलाबक्ष की बातें-कहानियाँ सुनते-सुनते नींद आ जाती। उसको यह भरोसा हो गया था की, अगर जरुरत पड़ी तो मौलाबक्ष उसे नींद से जरुर जगायेंगे। तब मौलाबक्ष बड़े ध्यान से घसीट खान का गायन सुनते और जैसे ही संगीत के सुर बन्द हो जाते, तुरन्त अपने घर जाकर घसीट खान से सुने हुए संगीत को दोहराते और उनकी गायकी को अपने कंठ में उतारने के लिए कठिन अभ्यास करते। यह क्रम कुछ महीनों तक अविरत चलता रहा।

मौलाबक्ष की अनुकरण व स्मरण शक्ति अद्भुत थी । मौलाबक्ष को सुनकर ऐसा लगता था, जैसे घसीट खान की ग्रामो-फोन रेकॉर्ड ही सुन रहे हों । मौलाबक्ष को अपने गुरु के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम था । घसीट खान के कंठ की मधुरता, मस्ती, साधना तथा अनुराग के साथ हाथ में तानपुरा लेकर उस्ताद की शैली से ही मौलाबक्ष गाने लगे । बाहर सुनने वाले लोगों के मुख में से यह उद्गार निकलते : "अरे ! घसीट खान यहा कहा से? । वो तो उस पार रहते है; आश्चर्य की बात थी कि घसीट खान गाए वहाँ और सुनाई दे यहा, अजीब है उनका यह जादू "।

मौलाबक्ष ने घसीट खान की गायकी को पूर्णरुप से आत्मसात कर लिया था, जैसे दो शरीर किन्तु आत्मा एक । उनकी गायकी मौलाबक्ष के गले में पूरी तरह से उतर चुकी थी, खुद घसीट खान गा रहे है ऐसा महसूस होता था । और यह बात फैलने में देर न लगी । लोग पहचान गए कि यह कोई नया घसीट खान पैदा हुआ है, और यह बात घसीट खान तक पहुँची । तब उन्हें भी आश्चर्य हुआ और यही उत्कंठा घसीट खाँन को मौलाबक्ष तक ले गई ।

एक दिन मौलाबक्ष अपने घर में रियाज कर रहे थे । उसी समय घसीट खान वहाँ से गुजर रहे थे, तब उनको मौलाबक्ष के गाने की आवाज सुनाई दी । उन्होंने तुरन्त पहचान लिया की यह वही बन्दीश है, जो वो गाते है । पर उसके अलावा भी कुछ ऐसी चीजें मौलाबक्ष गा रहे थे, जिसको आजतक उन्होंने कभी भी किसी को सुनाई तक नही है । वे दंग रह गए और उनसे रहा न गया । घसीट खान मौलाबक्ष के घर के अन्दर गए, तब मौलाबक्ष रियाज कर रहे थे । घसीट खान साहब ने गाना जारी रखने को कहा । पर मौलाबक्ष चुप हो गए । मौलाबक्ष के आश्चर्य की सीमा न रही । उनका अंतर आनंद से नाचने लगा । घर बैठे गंगा कहाँ से? भक्त के घर भगवान दर्शन देने जाए उतना आनंद मौलाबक्ष को हुआ ।

घसीट खान ने मौलाबक्ष से पुछा कि क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके गुरु का नाम क्या है? तब मौलाबक्ष ने कहा मेरे गुरुजी बहुत महान हैं । पर डरता हूँ कि अगर मैंने उनका नाम बताया, तो मेरा गाना मुझे हमेशा के लिए छोडना पडेगा । घसीट खान से रहा न गया । उन्होंने फिर से पूछा कि ऐसा कौन सा गुरु होगा, जो अपने चेले को खुद का नाम बताने से मना करेगा? तब मौलाबक्ष ने कहा कि आप आग्रह करते है, इसीलिए बताता हूँ कि आप ही मेरे गुरुजी हैं । घसीट खान ने आश्चर्य से पूछा "कौन,मै? मैंने तो आज तक आप को देखा भी नहीं था । तब मौलाबक्ष ने सारे रहस्य उजागर किये; तथा किस तरह छिपकर घसीट खान की गायकी सीखी, यह सत्य बता दिया । जवान मौलाबक्ष ने सभी बाते तो बता दीं और कहा "अब मन में एक डर सता रहा है कि जब मैं यहा से चला जाऊँगा, तब मैं आपका गाना सुन नही पाऊँगा । मुझे यह भी बताना होगा कि जो मैं जो कुछ भी सीखा हूँ वह आपकी ही देन है । आप ही मेरे उस्ताद हैं । पर सच तो यह है कि मैंने आपको ज्यादा समय सुना नहीं है, और इतना सीखा भी नहीं हूँ कि मैं खुद को आपका चेला और आपको अपना गुरु कहलाने का हकदार मानूँ ।

मौलाबक्ष कि बातों को घसीट खान बड़े ध्यान देकर सुन रहे थे । मौलाबक्ष की गुरु भावना से खुश होकर घसीट खान ने मौलाबक्ष को अपना शिष्य बना लिया और आजिवन संगीत शिक्षा देने का वचन दिया । इस छोटी-सी घटना से मौलाबक्ष के चरित्र के बहुत से पहलू उजागर होते है । एक अटल शख्शियत जो आनेवाले समय में किसी भी तरह की मुसीबत का सामना करने की मानसिकता रखती है । दूसरी बात यह है कि घसीट खान ने, जो एक अलग से गुरुर वाले कलाकार की छबि रखते थे, एक गरीब जवान का गुरु बनना कबूल किया । यह एक अचरज की बात थी । किन्तु इस बात से यह भी पता चलता है की वास्तव में घसीट खान एक दयालु और महान गुरु थे, जिन्होंने कुछ भी बाकी न रखते

हुए अपनी संपूर्ण कला मौलाबक्ष को सिखाई । घसीट खान के अंतकाल तक मौलाबक्ष उनके साथ रहे । घसीट खान कि मृत्यु के बाद मौलाबक्ष का एक दरबार से जीतकर दूसरे दरबार में जाना शुरु हुआ । यह एक जवान कलाकार की जीत की यात्रा शुरु हुई थी, और मौलाबक्ष अपने चुने हुए कामों तथा उससे मिलने वाली कामयाबी से बहुत खुश थे ।"[९]

२.३. उस्ताद मौलाबक्ष की सांगीतिक यात्रा

गुरु घसीट खान की मृत्यु के पश्चात मौलाबक्ष ने अपनी आजीविका एवं राज्याश्रय के आशय से हिन्दुस्तान के कई शहरों की यात्रा की । सर्वप्रथम उन्होंनें अपने चाचा के साथ मुंबई और दक्षिण में कोंकण शहरों की यात्रा की । वहाँ से मौलाबक्ष कोल्हापुर के महाराजा के दरबार में आमंत्रित किये गये । कोल्हापुर के महाराजा मौलाबक्ष के गायन से काफी प्रभावित हुए और उन्होंने मौलाबक्ष को बक्षीस के रुप में एक अरबी घोड़ा और नगद पुरस्कार भी प्रदान किया । कोल्हापुर के बाद मौलाबक्ष ने कुछ समय तक कुरुंदवाड़ा के गुणग्राही राजा के दरबार में अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान कीं । शिक्षा एवं आजिविका हेतु, मौलाबक्ष ने कई शहरों का परिभ्रमण किया और वहाँ से जो कुछ भी शिक्षा या अनुभव ग्रहण कर सकते थे, वह किया । विद्वान तथा सामान्य छोटे-बड़े सभी के पास जितना हो सका उनकी बातों को समझकर उनसे ज्ञान प्राप्त करते चले गए । मौलाबक्ष ने अपने मिलनसार स्वभाव, विनम्रता, सहनशीलता, धैर्य एवं कठोर परिश्रम से अल्प समय में ही संगीत के उच्च शिखर तक पहुँच चुके थे । चारों दिशाओं में उनकी लोकप्रियता बढ़ चुकी थी । "[१०]

बाद में मौलाबक्ष ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया; जहाँ ख्याति प्राप्त मौलाबक्ष को मैसूर नरेश ने अपने दरबार में आमंत्रित किया । मैसूर दरबार में उनके कई सांगीतिक जलसे आयोजित हुए । उत्तर हिन्दुस्तान से आनेवाले इस

संगीतकार को सुनने के लिए हर एक संगीत प्रेमी उत्सुक रहता था । उनके संगीत को सुनकर मैसूर के राजा और प्रजा दोनों काफी प्रभावित हो चुके थे । मानो कोई स्वरकिन्नर न आया हो । मौलाबक्ष के संगीत से खुष होकर मैसूर नरेश ने उनको २०००/- रू का पारितोषिक देकर सम्मानित किया और दरबारी गायक के स्थान पर उनकी नियुक्ति की ।"[११]

मैसूर दरबार में राज्याश्रय के दौरान उनका सामना कर्णाटकी संगीत और संगीतकारों से हुआ । उनका संगीत सुनने के पश्चात मौलाबक्ष कर्णाटकी संगीत की आध्यात्मिकता, शास्त्र एवं विज्ञान से काफी प्रभावित हुए ।

मैसूर दरबार की व्यवस्था देखने वाले दीवान की पुत्री का अजीब, मनोहर वीणा-वादन सुनकर मौलाबक्ष काफी प्रसन्न हुए थे । तभी उन्होंने यह महसूस किया कि उनकी संगीत शिक्षा अभी अधूरी है, और अभी उन्हें बहुत कुछ सीखना बाकी है । मौलाबक्ष को लगा कि दक्षिण भारतीय संगीत, उत्तर भारतीय संगीत से अधिक प्राचीन, परंपरागत तथा शास्त्रीय इतिहास रखने वाला संगीत है । उन्हें जल्द ही यह महसुस हुआ कि मुगल काल में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत ने कितना कुछ खोया है । कर्णाटक संगीत पर मुगल संगीत, संस्कृति एवं भाषा का प्रभाव नहीं हुआ था । दक्षिणी संगीत की भाँति उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में आध्यात्मिकता, वैज्ञानिकता तथा उनके प्राचीन शास्त्र तथा विद्या का जतन नही किया गया है । उन्हें यह भी समझ में आया कि किस तरह अरेबीक और पर्शीयन संगीत का प्रभाव उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पर हुआ है । दक्षिण हिन्दुस्तानी संगीत मुगल एवं अन्य विदेशी प्रभाव से बचा हुआ था । दक्षिण में अभी भी पारंपरिक आर्य संगीत विद्या के अवशेष मौजूद हैं एवं यहाँ के संगीतकार उत्तर भारतीय संगीतकारों की भाँति किसी राजा-महाराजा या रईसों के मनोरंजन के लिए नही गाते थे; वरन् अपनी संगीत कला वे ईश्वर को सर्मपित करते है । मैसूर में

दक्षिणी संगीत को जानने-परखने के बाद मौलाबक्ष को इस संगीत को सीखने की इच्छा प्रबल हुई और दक्षिण के संगीतकार त्यागराज और दिक्षितर जैसे महान संगीत सर्जकों की कृतिओं में मौलाबक्ष की दिलचस्पी बढ़ती गई । त्यागराज और दिक्षितर को मौलाबक्ष "नाद के संत" के रुप में विशेष आदर-सम्मान प्रदान करते थे ।"[१२]

उस समय तक मौलाबक्ष ने संगीत क्षेत्र में बड़ा नाम कमाया था । पर उनको संगीतशास्त्र की विशेष जानकारी नहीं थी, इस विषय में उनका गहन अभ्यास नही हुआ था । मौलाबक्ष ने जब राजबक्षी की पुत्री से दक्षीण का शास्त्र एवं ऐसा शुद्ध आध्यात्मिक संगीत सीखने की इच्छा प्रकट की, तब उस सुशिक्षित महिला ने मौलाबक्ष से कहा कि आप एक मुस्लिम है, आप यह कला नहीं सीख सकते; क्योंकि यह केवल ब्राहमणों की निजी कला है और इस पर केवल ब्राहमणों का ही अधिकार है और यह कला ब्राम्हणों का धर्म है । यह कला सिर्फ ब्राहमणों को ही सीखाई जाती है । यदि यह कला सीखनी है, तो आपको अगले जनम में ब्राहमण कुल में जन्म लेना होगा तभी आप यह संगीत सीखने का सौभाग्य प्राप्त होंगा ।

इस तरह के कठोर एवं अमानवीय जवाब से मौलाबक्ष काफी व्यथित हुए । धर्म-जाति, ऊँच-नीच के आधार पर संगीत सीखना और सीखाना मौलाबक्ष को उचित नहीं लगा । और उन्हें यह सोचने पर मजबूर किया कि क्यों न एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनाई जाए, जिसमें बिना किसी भेदभाव के संगीत का आदान-प्रदान किया जाए और इसी अनुभव से सबक लेकर मौलाबक्ष ने अपने जीवन के आखरी दस सालों में बड़ौदा में संगीत की गायन शाला की स्थापना की ।

मौलाबक्ष के जीवन संबंधित दस्तावेजों से यह बात निश्चित होती है कि वे केवल मनोरंजन करने वाले कलाकार न होकर संगीत के महा-उपासक थे ।

कर्णाटकी संगीत और शास्त्र सीखने की उनकी इच्छा मैसूर में पूरी न होने की वजह से उन्होंने राज्य-गायक के सभी प्रकार के मान-सम्मान और ठाट-बाट का त्याग करके तांजोर जाने का फैसला किया । मैसूर नरेश ने मौलाबक्ष को रोकने का बहुत प्रयत्न किया । किन्तु दक्षिणी संगीत सिखने का दृढ़ निश्चय करने वाले मौलाबक्ष ने महाराजा से कहा की "जब तक मै दक्षिणी संगीत कि कला को सीख कर, उसमें निपुण नहीं हो जाता, तब तक अपना मुँह भी मैं आपको नही दिखाऊँगा"। महाराजा द्वारा दिये गए सभी पुरस्कारों को वहीं पर छोड़कर मोलाबक्ष दक्षिण की ओर, मेंग्लोर, मालाबार, त्रावणकोर इत्यादि स्थलों कि यात्रा कि ।

यात्रा के दौरान तांजोर में उनकी मुलाकात प्रखर संगीतज्ञ सुब्रहमण्यम् अय्यर से हुई । वे अपने जमाने के मशहूर संगीतज्ञ माने जाते थे । सुब्रहमण्यम् अय्यर एक परंपरावादी और कर्मठ ब्राहमण थे । वे अपनी कला को बहुत संभालते थे । यहाँ तक कि वे जब नहाने जाते तब भी अपनी किताबों को नजर अंदाज नही होने देते थे । उन्हें अपने साथ में ही रखते थे, अपने खास शिष्यों को भी अपने ग्रंथो को स्पर्श करने की इजाजत नहीं देते थे । किसी अब्राहमण की छाया भी अगर उन पर पड़ती तो शुद्ध होने के लिए फिरसे स्नान करते थे । इतने सख्त और परंपरावादी होते हुए भी मौलाबक्ष की विनम्रता, सेवा–भाव और संगीत सीखने कि उनकी प्रबल इच्छा-जिद के सामने सुब्रहमण्यम् अय्यर को झुकना पड़ा । मौलाबक्ष पर प्रसन्न होकर उन्हें अपना शिष्य बनाया और पारंपारीक दक्षिणी संगीत के विज्ञान, शास्त्र, संस्कृत भाषा तथा त्यागराजा और दिक्षितर कि रचनाओं को मौलाबक्ष को सीखाया । राग प्रस्तार, ताल प्रस्तार, स्वर प्रस्तार, गमककला, जातिलय, संधि, सरगम इत्यादि दक्षिणी संगीत के विभिन्न अंगो का अभ्यास भी मौलाबक्ष को करवाया ।

अभ्यास पूरा करके सन् १८६३ में मौलाबक्ष पुनः मैसूर में आये । उल्लेखनिय है कि तीस वर्ष की अल्प आयु में ही मौलाबक्ष ने अपनी प्रखर साधना एवं लगन से दक्षिण और उत्तर हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार के संगीत में निपूणता हांसिल कर ली थी । महाराजा को कर्णाटक संगीत एवं शास्त्र में निपुण होने का दिया हुआ वचन मौलाबक्ष ने पूर्ण कर दिखाया था । मौलाबक्ष के पुनरागमन एवं उपलब्धियों से खुश मैसूर नरेश ने मौलाबक्ष को उस जमाने में हिन्दुस्तान में दिये जानेवाले बड़े से बड़े सम्मान प्रदान कर के उन्हें पुनः अपने दरबार में उच्च पद पर नियुक्त किया । मौलाबक्ष को राजपोशाक, कलगी मतलब सुवर्ण जड़ा सरपंची, जवाहारात से सजाई पगड़ी, छत्र यांनी बड़ा छाता, जिसे नौकर, जब मालिक चले या घुड़सवारी करे उस समय मालिक के सिर पर पकड़ कर पीछे-पीछे चले, मशाल, जो अंधेरे में रोशनी के लिए मालिक के साथ नौकर ले कर चलता था, चामर यानी जवाहारात से सजाई लकड़ी या मानदंडा, जब सम्मानित व्यक्ति चले तो नौकर मानदंड लेकर उसके सामने लेकर चलता था एवं १५०० रुपये कि राशि देकर सन्मानित किया गया । ”[१३]

इन सभी बातों से मैसूर के दरबारी ब्राहमण संगीतज्ञ बहुत नाराज हुए थे । उन्होंने महाराजा से विनती की कि इस तरह के राजकिय सम्मान सिर्फ उन कलाकारों को मिलना चाहिये जो दरबार में अपनी कला का प्रदर्शन करके खुद की निपूणता को साबित करें । जहाँ तक मौलाबक्ष का सवाल है उन्होंने अब तक खुद को साबित नही किया है तो उनको इस तरह सम्मानित करना कहाँ का न्याय है?

इस बात से सहमत होकर महाराजा ने एक संगीत प्रतियोगिता का आयोजन किया और मौलाबक्ष के सामने अपनी विद्वता साबित करने की चुनौति का प्रस्ताव रखा । इस संगीत प्रतियोगिता में संस्कृत के पंड़ीत तथा संगीत एवं

उसके शास्त्र में निपुण ब्राम्हणों को आमंत्रित किया गया । यह प्रतियोगिता करीब ग्यारह महीने तक चली थी । जिसमें में मौलाबक्ष की विजय हुई थी, जिससे खुश होकर महाराजा ने मौलाबक्ष को "संगीतरत्न" की उपाधि से सम्मानित किया था । मौलाबक्ष के विजय जश्न को मनाने के लिए राज्य में एक खास सवारी भी निकाली गई । किन्तु इस घटना के एक वर्ष बाद ही मौलाबक्ष ने नौकरी छोड़ दी और टीपू सुल्तान की आधिकारिक तौर की वंशज लड़की से शादी कर ली और बड़ौदा की ओर प्रस्थान किया ।"[१४]

मौलाबक्ष अपने संगीत यात्रा के दौरान ही सन् १८६३ से १८७० के बीच कई बार बड़ौदा आये थे । सन् १८६८ में उन्होंने बड़ौदा के याकुतपुरा विस्तार में श्री नवलखा शेठ से एक बड़ा निवास स्थान खरीदा था । मौलाबक्ष के निवास स्थान पर हमेशा विद्वानों का मेला लगा रहता था । प्रतिष्ठित एवं गुणी ऐसे कवि, संगीतज्ञ, विचारज्ञ, तत्त्वज्ञ, साहित्यकार इत्यादि के साथ काव्य, संगीत, साहित्य जैसे विविध विषयो पर चर्चा विचारणाओं का आदान-प्रदान हुआ करता था । यही कारण था कि मौलाबक्ष के निवास स्थान को "पवित्र विलास" या "ज्ञान का मंदिर" के नाम से भी संबोधित किया जाता था । अधिकतर लोग आज उसे "मौलाबक्ष वाड़ा" या "मौलाबक्ष निवासस्थान" के नाम से जानते पहचानते है; वर्तमान समय में मौलाबक्ष के वंशज आज भी इस निवासस्थान में निवास करते हैं ।"[१५]

मैसूर में हुई प्रतियोगिता से मौलाबक्ष की ख्याति चरम सीमा पर पहुँच गई थी । कर्णाटकी और उत्तर हिन्दुस्तानी दोनों ही संगीत निपुण ऐसे मौलाबक्ष को कई राजा-महाराजाओं के निमंत्रण आने शुरु हुए थे । किन्तु मौलाबक्ष ने उनका अस्वीकार कर दिया था । बड़ौदा से उन्हें विशेष लगाव और प्रेम था । उनकी

संगीत शिक्षा भी यहाँ पर ही हुई थी । उनके कई संगीतज्ञ मित्र एवं रिश्तेदार बड़ौदा या उसके आसपास रहते थे ।

सन् १८७० में बड़ौदा में उस वक्त महाराजा खंडेराव गायकवाड़ का राज्य था; जिन्होंने मौलाबक्ष को उनकी कि कीर्ति-ख्याति सुनकर अपने दरबार में राज्य-दरबारी-गायक के पद के लिए निमंत्रण दिया; मौलाबक्ष ने उसका प्रेम से स्वीकार कर लिया । मौलाबक्ष की प्रतिमाह आठ सौ रुपिये के वेतन पर दरबारी गायक के पद पर नियुक्ति हुई । परन्तु बड़ौदा आने के बाद मौलाबक्ष बहुत निराश हो गये । उन्हें लगा कि मैसूर छोडकर बड़ौदा आने का फैसला गलत साबित हुआ, महाराजा ने उनको दरबारी गायक के रुप में बडा पद तो दे दिया था; किन्तु महाराज को खुद संगीत में उतनी रुचि नहीं थी । महाराजा ने इस महान संगीतकार की नियुक्ति उनके संगीत कौशल्य या विद्वता के कारण नहीं, किन्तु केवल अपने दरबार कि शोभा या गौरव बढाने के लिए की थी । मौलाबक्ष को स्वयं की विद्या, विद्वता का स्वाभिमान था; उन्हें खुशामत पसंद नहीं थी एवं केवल एक कठपुतली की तरह दरबारी गायक रहना उन्हें कतई पसंद नही था ।

मौलाबक्ष को दरबारी गायक का रुतबा हासिल था, सरदार के समान सम्मान मिलना बाकी सरदारों को रास नहीं आता था, इसीं कारण मौलाबक्ष को दरबारियों की नाराजगी सहन करनी पडती थी । महाराजा भी मौलाबक्ष से नाराज रहते थे; क्यों कि मौलाबक्ष से महाराजा का मान नहीं बढ रहा था । मौलाबक्ष दबकर नहीं रह सकते थे, जैसे कि महाराजा के पास रहनेवाले बाकी सरदार हांजी-हांजी करते थे । मौलाबक्ष दरबार के समारोह में तथा राजसवारी के समय मैसूर में मिले उपहार जैसे कि उनके आगे नौकर राजदंड लेकर सिर के ऊपर छत्र लेकर पीछे चलता था, सिर पर हिरे जवाहारात से लदी पग़डी पहनते थे, इस तरह के राजवी ठाट-बाट के साथ रहनेवाले मौलाबक्ष को दरबार के

अधिकारी लोगो कि नाराजगी का सामना करना पड़ा । महाराजा ने उनकीं बातो में आकर अपने एक करीबी दरबारी को मौलाबक्ष के सामने यह पूछने के लिए भेजा कि आपको राज्य पोशाक, राज चिह्न धारण करने का क्या अधिकार है; आप केवल एक दरबारी कलाकार हैं । यदि आपके पास राजदंड रहा तो महाराज का अपमान होंगा । तब मौलाबक्ष ने संस्कृत में जवाब दिया,

स्वदेशे पूज्यते राजा, स्वग्रामे पूज्यते प्रमुखः।

स्वगृहे पूज्यते मूर्खः विद्वान सर्वत्र पूज्यते ॥

हम विद्वान हैं; हमारा राज सभी जगह होता है । महाराज मौलाबक्ष के इस जवाब से बहुत नाराज हुए । यह गवैया बहुत अहंकारी है । इसीलिए इस अपमान का बदला लेने और मौलाबक्ष को नीचा दिखाने के लिए महाराजा ने मौलाबक्ष को महान संगीतकारों के साथ प्रतियोगिता के लिए चुनौति दी जिसमें, गायन, वादन, ताल, नृत्य और अभिनय के जानकार महान कलाकारों को आंमत्रित किया गया । अभिनय के जादूगर कन्हाई, वीणा के महान कलाकार अलीहुसैन, तबला और पखावज के महान कलाकार नासर खान, महान गायक खादिमहुसैन खान इत्यादि ने इस प्रतियोगिता भाग लिया । किन्तु इनमें से कोई भी संगीतविद्या एवं शास्त्रीय ज्ञान में मौलाबक्ष जैसे प्रवीण नहीं थे । मौलाबक्ष ने सभी कलाकारों से भिडंत लेकर बता दिया कि वो कितने महान और हिम्मतवाले कलाकार है । मौलाबक्ष अपने समकालीन कलाकारों से कई गुना अधिक प्रगति कर चुके थे । अतः आयोजित इस संगीत प्रतियोगिता में मौलाबक्ष का भव्य विजय हुआ । मौलाबक्ष की जीत से नाराज दरबारी कलाकारों ने मौलाबक्ष पर कई आरोप लगाये । वे किसी कालाजादू या भानामती जानते हैं । उससे वे प्रतिद्वंदी कलाकार और श्रोता समुदाय को प्रभावित करते हैं । यह बात महाराजा को भी सच लगने लगी ।"[१६]

किन्तु जिस अग्नि परिक्षा से मौलाबक्ष अभी-अभी गुजरे थे, उससे उनका जीवन बदल गया । उस संगीत सभा से उनके समझ में आया कि हिन्दुस्तानी संगीत कितना महान है; और उसकी शास्त्रीय जानकारी रखनेवालों कलाकारों कि देश को कितनी जरुरत है । उस संगीत सभा में सभी कलाकारों ने अपनी कला का उच्चतम प्रदर्शन तो किया था; पर किसी को भी शास्त्र और विज्ञान की जानकारी नहीं थी तथा सभी कलाकारों ने जोश में आकर शास्त्र की अनदेखी की थी । हिन्दुस्तानी संगीत में जिसको लय ताल कहते हैं, उसे मौलाबक्ष जन्म से ही जानते थे । जन्म से ही उनकी आवाज अच्छी थी, उनके पास प्रदर्शन करने की अनूठी क्षमता थी । भगवान की देन, सालों का अभ्यास, सीखने कि जिज्ञासावृत्ति और परिश्रम से मौलाबक्ष ने कला को सिद्ध हस्त कर लिया था । मौलाबक्ष जानते थे कि यदि उनके पास कर्णाटकी संगीत की शास्त्रोक्त व प्रयोगिक जानकारी न होती तो वे उन बड़े-बड़े कलाकारों के सामने खड़े भी नहीं हो पाते । उत्तर हिन्दुस्तानी और दक्षिण हिन्दुस्तानी संगीत की साधना किये हुए मौलाबक्ष सभा में अलग से दिखाई देते थे ।

प्रतियोगिता में भाग लेने वाले कन्हाई एक बड़े नाट्य कलाकार थे । उनकी हर अदा उनके मन की भावनाओं को प्रगट करती थी । उनके हाथों की मुद्राएँ बोल रही हों, ऐसा प्रतित हो रहा था । वे पूर्वी नाट्य संगीत करने में प्रवीण थे । पर मौलाबक्ष ने कर्नाटकी संगीत नाट्यशास्त्र की मनोवैज्ञानिकता का जैसा अभ्यास किया था उसका कोई भी मुकाबला नही कर सकता था । मुकाबले में शरीक होने वाले कलाकारों में सिर्फ नासर खान ही मौलाबक्ष के जीवन भर के लिए दोस्त बन गये थे । नासर खान भी बाकि कलाकारों कि भाँति प्रस्तुति में कम पड गये थे । मौलाबक्ष ने गौर किया की सभी कलाकारों कि प्रस्तुति संपूर्ण नही थी । उत्तर हिन्दुस्तानी कलाओं पर पर्शियन, अरेबियन और पुराने ग्रीस कि कलाओं का प्रभाव काफी हुआ है । उसमें नजाकत और सुंदरता तो है, मंत्रमुग्ध

करने वाला जोश भी है, किन्तु दक्षिण हिन्दुस्तानी संगीत की सादगी, संयम, धार्मिक पवित्रता का अभाव है ।

महाराजा खंडेराव के दरबार में हुई संगीत प्रतियोगिता में मौलाबक्ष विजयी तो हुए, किन्तु उन्हें यह महसुस हुआ कि यहाँ पर संगीत कला को केवल मनोरंजन के रुप में ही प्राधान्य दिया जाता है । कलाकारों को केवल दरबारी शोभा बढ़ाने के लिये नियुक्त किया जाता है । जहाँ कलाकार और उसकी साध्य कला का कोई आदर सम्मान नहीं होता, वहाँ स्थाई होना मौलाबक्ष ने उचित न समझा और उच्च वेतन तथा ठाट-बाट इत्यादि को छोड़कर वे देश के विभिन्न प्रदेशों के सांगीतिक यात्रा पर निकल पड़े ।

बड़ौदा छोडने के पश्चात् मौलाबक्ष ने हैद्राबाद के निज़ाम सर-सालारे-जंग के प्रधानमंत्री के आमंत्रण को स्वीकार किया । हैद्राबाद में मौलाबक्ष की कला एवं विद्वत्ता का बहुत आदर सम्मान किया गया।"[१७]

सन् १८७० में बड़ौदा नरेश महाराजा खंडेराव के निधन के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी के रुप में महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ ने बड़ौदा की बागडोर सँभाली । मल्हारराव स्वंय मौलाबक्ष की विद्वत्ता से परिचित थे, अतः उन्होंने मौलाबक्ष को पुनः बड़ौदा आमंत्रित किया एवं दरबारी कलाकारों में सर्वोच्च स्थान पर नियुक्त किया । मौलाबक्ष अपने सांगीतिक यात्रा के दौरान जहाँ भी गये, वहासे कुछ न कुछ नया संगीत सीखते गये । जिस तरह मैसूर, तांजोर, मालाबार इत्यादि शहरों में मौलाबक्ष ने दक्षिणी संगीत के शास्त्रीय एवं क्रियात्मक पक्ष का अभ्यास किया और उसमें विद्वत्ता हाँसिल की, ठीक उसी तरह मल्हारराव, बड़ौदा के शासन काल में मौलाबक्ष, स्थानिक ब्रिटिश अधिकारियों के संर्पक में आये और उनके पाश्चात्य संगीत एवं स्टाफ स्वरलिपि से बेहद् प्रभावित हुए । पाश्चात्य संगीत को सीखने की जिज्ञाशा-वश मौलाबक्ष को ब्रिटिश अधिकारियों के साथ

दोस्ती के लिए मजबूर होना पड़ा । अतः सन् १८७० से १८७४ मल्हारराव के शासन के इन चार वर्षों में मौलाबक्ष का ब्रिटिश अधिकारियों के साथ गहरे संबंध स्थापित हुए । दोनों के बीच में भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत को समझने तथा सीखने के लिए आचार-विचारणाओं का आदान-प्रदान शुरु हुआ । इसी दौरान एक ब्रिटिश अधिकारी की पुत्री मौलाबक्ष के सांगीतिक विद्वत्ता से प्रभावित हुई और उनसे भारतीय संगीत सीखने लगी । ठीक उसी तरह मौलाबक्ष ने भी स्टाफ स्वरलिपि सिखने के लिए ब्रिटिश अधिकारी जे.जे.बह्ट और रोबर्ट फ़्यारे से अपने संपर्क स्थापित किये और उनसे स्टाफ नोटेशन का ज्ञान अर्जित किया ।"[१८]

संगीत शिक्षा के आदान-प्रदान हेतु मौलाबक्ष और ब्रिटिशरों के बीच बढ़ती नज़दीकियों को अन्य दरबारी कलाकारों द्वारा संशय की नजर से देखा जाने लगा । मौलाबक्ष पर आरोप लगाये गये कि वे अंग्रेजों के लिए जासूसी का कार्य करते हैं । मौलाबक्ष इन आरोपों से बहुत व्यथित हुए, किन्तु फिर भी मौलाबक्ष ने महाराजा के प्रति संपूर्ण वफ़ादारी निभाते हुए अपने दोस्त बने ब्रिटिश अधिकारिओं और मल्हारराव के बीच के विवाद को सुलझाने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किए, किन्तु उसमें वे असफल रहे । आखिर सन् १८७४ में ब्रिटिशरों ने मल्हारराव से नाराज होकर उन्हें पदच्युत किया । इस घटना से निराश होकर मौलाबक्ष ने पुनः एक बार बड़ौदा को छोड़ने का निर्णय किया ।

सन् १८७५ में कलकत्ता के अमीर "जमीनदार" संगीतज्ञ राजा ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर ने मौलाबक्ष से प्रभावित होकर उन्हें अपने पोतों को संगीत शिक्षा देने के लिए आंमत्रित किया । अपने पोतों की संगीत की शिक्षा की उन्नति देखकर टैगोर ने तत्कालीन वाईसरॉय लार्ड नार्थब्रुक से मौलाबक्ष का परिचय करवाया । मौलाबक्ष मानते थे कि विदेशियों में इस कला के प्रति भाव जागृत करना हो तो पाश्चिमात्य संगीत का भी अभ्यास करना जरुरी है । मौलाबक्ष की शास्त्र

आधारित विद्वत्ता एवं कलाकारी से प्रभावित होकर वाईसरॉय लार्ड नार्थब्रुक ने उन्हें "प्रोफेसर ऑफ म्युजिक" कि पदवी से सम्मानित किया ।"[१९] बंगाल स्कूल ऑफ म्युजिक के संस्थापक एवं भारतीय संगीत के उत्थान के लिए प्रयास करने वाले विद्वान एस.एम. टैगोर भी मौलाबक्ष की विद्वता से काफी प्रभावित हुए थे । भारतीय संगीत को पुनःप्रतिष्ठित करने की दिशा में एस.एम.टैगोर ने मौलाबक्ष के साथ मिलकर सांगीतिक करार किये । इस करार पर मौलाबक्ष, एस.एम.टागोर और अन्य २७ संगीतज्ञों के हस्ताक्षर लिए गए । मौलाबक्ष द्वारा क्षेत्र मोहन गोस्वामी को उनकी स्वरलिपि को सर्मथन देने हेतु एक लिखित प्रमाण पत्र भी दिया गया था ।"[२०]

इस समय जो दो घटनाएँ हुईं; उनका गहरा असर मौलाबक्ष के जीवन पर पड़ा था । औध (अवध) के राजा वाजीद अली शाह संगीत के बड़े शौकीन थे । उन्होंने मौलाबक्ष के बारे में जाना और खूब सराहा था । मौलाबक्ष ने अपना गायन उनके सामने प्रस्तुत किया और साथ-साथ संगीत के पुनःरुत्थान के विषय पर विचार विर्मश किया । बातों-बातों में मौलाबक्ष के मनमें विचार आया, जैसे आदमी संगीत को उपर उठा सकता है वैसे गिराने का भी कारण बन सकता है । संगीत के शौकीन वाजिद अली शहा संगीत को केवल मनोरंजन का साधन मानते थे । दरबारी कलाकारों को "अरबाब-ई-निषात" यानी मजा करने का जरिया मानते थे । मौलाबक्ष को यह बात गलत लगी । मौलाबक्ष हंमेशा संगीत के दर्जे को उपर उठाने के लिए सोचते थे, तब उनके मन में यह विचार आया कि संगीत को केवल "मनोरंजन का साधन" बनने से रोकने के लिए समाज को भारतीय संगीत से जोड़ना बेहद जरुरी है और उसके लिए संगीत-शिक्षा का एक सार्वजनिक संकाय स्थापित करना ही समय कि मांग हैं ।"[२१]

दूसरी घटना के अनुसार जब जयपुर महाराजा रामसिंह ने मौलाबक्ष को आमंत्रीत किया था । महाराजा ने वहाँ "गुणिजन खाना" बनवाया था । यह एक जयपुर के गुणिजनों का संघटन था । वहा मौलाबक्ष की अलग-अलग जगह से आये गुणिजनों से मुलाकात हुई । मौलाबक्ष जी को यहाँ पर भी दुखी होना पड़ा, क्योकि वहाँ ऐसे कई गुणी कलाकार थे, जो संगीत की रचना और प्रस्तुति करना तो जानते थे, परन्तु संगीत का स्तर बढाने, और समाज में संगीत-शिक्षा व्यवस्था को प्रस्थापित करने के विषय में चर्चा करने के लिए भी कोई कलाकार तैयार नही था ।"[२२]

सन् १८७५ में मल्हारराव पदच्यूत होने के बाद राजगद्दी पर नियुक्त सयाजीराव गायकवाड़ तृतिय ने सन् १८८० में पुनः मौलाबक्ष को बड़ौदा का आमंत्रण दिया और मौलाबक्ष पुनः बड़ौदा वापस आए । बड़ौदा के प्रधानमंत्री सर.टी.माधवराव से मौलाबक्ष की पुरानी जान-पहचान थी, वे दोनों त्रावणकोर में एक-साथ नौकरी कर चुके थे । छोटे सयाजीराव गायकवाड़ को प्रभावशाली राज्य व्यवस्थापक और एक कर्तव्यनिष्ठ राजा बनाने में सर.टी.माधवराव कि अहम भूमिका थी । यह जवान राजा किसी भी क्षेत्र की प्रतिभा को तुरन्त पहचान लेता था । एक शिक्षित, संस्कारी, धर्मनिरपेक्ष एवं आधुनिक सोच रखने वाले महाराजा के छत्र-छाया में कार्य करने से मौलाबक्ष काफी खुश थे । उनको लगा कि अब उनके सपनों को पूर्ण करने का यह स्वर्ण अवसर है ।

सन् १८८१ में राज्याभिषेक होते ही सयाजीराव ने सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए कई सराहनिय कार्य किए, जिसमें संगीत-शिक्षा को भी महत्वपूर्ण समझा गया था ।

उम्र के ४७ वें वर्ष तक मौलाबक्ष मैसूर, बड़ौदा, कलकत्ता, जयपुर, हैदराबाद, तांजोर, लखनऊ इत्यादि राज्यों में अपनी सांगीतिक सेवा दे चुके थे ।

पूरे भारत में उन्हें लोकप्रियता तथा मान-सम्मान प्राप्त हो चुका था । वे एक सफल, विद्वान कलाकार के रुप में पुरे भारत वर्ष में प्रस्थापित हो चुके थे । मौलाबक्ष के सांगीतिक जीवन का अभ्यास करने से यह मालूम होता है कि उन्होंने अपने जीवन का सर्वाधिक समय महाराजा सयाजीराव तृतिय के शासन काल में व्यतीत किया था, अपने जीवन के आखरी १५-१६ वर्ष, यांनी सन् १८८० से उनके स्वर्गवास सन् १८९६ तक वे बड़ौदा मे ही रहकर संगीत की उन्नति हेतु कई सराहनीय कार्यं किए ।

इससे पहले उन्होंने किसी भी राज्याश्रयों में दो-तीन वर्ष से अधिक का समय व्यतीत नही किया था । वहाँ मौलाबक्ष को केवल सांगीतिक मनोरंजन और दरबारी शोभा बढ़ाने के लिए आमंत्रित किया जाता था । किन्तु मौलाबक्ष की मौलिकता, सर्जन शीलता कि अनदेखी की जाती थी । एक तत्वचिंतक व साधक कलाकार का अंर्तमन मौलाबक्ष को चुपचाप नहीं बैठने दे रहा था ।

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ एक उन्नत, प्रगतिशील राजा के रुप में जाने जाते थे । मौलाबक्ष की प्रतिभा को उन्होंने भली भाँति पहचान लिया था । सयाजीराव और मौलाबक्ष दोनों ही अपने दरबार के ठाट-बाट, एशो आराम से परे, बाहरी दुनिया अर्थात् अपने समाज के लोगों को विभिन्न क्षेत्रों में विकासशील और आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे ।

अबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, धर्म-जाति के भेदभाव के बिना प्राथमिक-माध्यमिक और उच्चस्तरीय शिक्षा को अनिवार्य बनाना और उसे प्रोत्साहन देना महाराजा की प्राथमिकता रहती थी । महाराजा के इसी सकारात्मक और आधुनिक विचारों का लाभ मौलाबक्ष को मिला । फलस्वरुप समाज में संगीत शिक्षा देना और उसके लिए स्वरलिपि प्रस्थापित करने का मौलाबक्ष का सपना बड़ौदा में पूरा हुआ ।

उपर्युक्त महान कार्य बिना किसी राज्याश्रय, समर्थन तथा विशेषतः आर्थिक सहायता के संभव नहीं था । संगीत शिक्षा के विकास एवं संगीत के पुनरुत्थान के लिए मौलाबक्ष द्वारा दिये गए हर एक सुझाव-प्रयोगों को महाराजा का प्रोत्साहन मिला । परिणाम स्वरुप बड़ौदा राज्य में देश की सर्वप्रथम संगीत गायन शाला, सांगीतिक स्वरलिपि और पाठ्य पुस्तकें जैसी ऐतिहासिक एवं विकासशील बातों का निर्माण एवं स्थापन करने का महान कार्य मौलाबक्ष द्वारा पूर्ण हुआ । इस तरह जीवन के आखिरी समय में मौलाबक्ष ने अपने अथक परिश्रम से अपने आप को संगीत की दुनिया में सूर्य कीं भाँति जाज्वल्यमान कर लिया था ।

२.४ गायनशाला कि स्थापना में उस्ताद मौलाबक्ष का योगदान

मौलाबक्ष को बचपन से ही संगीत की शिक्षा ग्रहण करने के लिए कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था । बड़ौदा में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत और मैसूर में दक्षिण हिन्दुस्तानी संगीत के क्रियात्मक, एवं शास्त्रात्मक पक्ष को सीखने के उनके संकल्प को पूर्ण करने के लिए मौलाबक्ष को काफी अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ा था । इसी अनुभव ने मौलाबक्ष को संगीत-शिक्षा की संस्था खोलने के दिशा में प्रेरित किया । वे चाहते थे कि संगीत सीखने हेतु जिन कठिनाइयों का सामना उन्हें करना पड़ा, वैसा संघर्ष ओर किसी संगीत जिज्ञासु एवं विद्यार्थी को न करना पड़े, और वह अपनी संगीत सीखने कि अभिलाषा को आसानी से पूर्ण कर सके । यही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था ।

इस "अभिजात संगीत","शुद्ध संगीत" या "ईश्वरीय संगीत" के सीखने के लिए धर्म-जात, उँच-नीच, घरानेदार संगीत कलाकारों की संगीत विद्या सिखाने कि संकुचितता इत्यादि कारणों के दुष्परिणाम स्वरुप संगीतशिक्षा को भारत में अन्य देशों कि तरह सम्मान जनक स्थान प्राप्त नहीं हुआ था । मौलाबक्ष के

सांगीतिक जीवन से यह बात निश्चित तौर पर सामने आती है कि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत के पुनरुत्थान के लिए तथा समाज में संगीत-शिक्षा के माध्यम से संगीत को प्रचलित करने हेतु समर्पित कर दिया था । उस समय की इस कठिन परिस्थिति से भारतीय संगीत को उबारने के लिए मौलाबक्ष के प्रयत्न "नींव का पत्थर" साबित हुए ।

मौलाबक्ष के सांगीतिक परिभ्रमण के दौरान उन्हें कई राज्यो में राज्याश्रय, आदर, सम्मान एवं लोकप्रियता हासिल हुई थी । किन्तु मौलाबक्ष के प्रयोगात्मक और वैज्ञानिक संगीत को स्थापित करने के विचार को कहीं पर भी प्रोत्साहन एवं सहयोग नहीं मिला । उनकी गायनशाला एवं स्वर-लिपि प्रस्थापित करने की सोच का मजाक उडाया गया । मौलाबक्ष को यह महसूस हुआ कि भारतीय संगीत केवल राजा-महाराजाओं-रईसों के मनोरंजन एवं उनकी दरबारी शोभा बढ़ाने तक ही सिमित होकर रह गया है । संगीत के स्तर को ऊँचा लाने के लिए कोई चर्चा तक करने को तैयार नहीं है, तो फिर हमारी संगीत की यह प्राचीन व परंपरागत धरोहर, उसका शास्त्र कैसे जीवित रह सकता है । यह उनकी चिंता का मुख्य कारण था । मौलाबक्ष के कई प्रयत्नों के बाद भी जहाँ उनकी इस महेच्छा को पूर्ण करने की अभिलाषा अशतः समाप्त हो चुकी थी । किन्तु मानों ईश्वर ने उनकि इस प्रार्थना को सुन लिया हो और मौलाबक्ष को उनके जीवन के अन्तिम वर्षो में बड़ौदा के दीर्घद्रष्टा महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने मौलाबक्ष को गायनशाला प्रस्थापित करने कि अनुमति दि और समाज में संगीत को प्रचलित करने की सोच का स्वागत किया ।

उस जमाने में जिस प्रकार देश में अन्य विद्या-कलाओं की दुर्दशा हुई थी, उसी तरह संगीत भी मृतप्राय होने के कगार पर गतिमान होता जा रहा था । संगीत शास्त्रों का अभ्यास तथा ज्ञान रखनेवाले गुणीजन कम ही दिखाई देते थे ।

इस दुःखद परिस्थिति में भी मौलाबक्ष ने गायन-शाला की स्थापना करके समाज में रहनेवाले आम लोगों को संगीत के क्रियात्मक और शास्त्रात्मक दोनों ही विधाओं की शिक्षा प्रदान करके संगीत को प्राचीन काल की भाँति पुनःलोकप्रिय बनाकर उसे समाज का अहम् हिस्सा बना दिया था । मौलाबक्ष की इस क्रांतिकारी सोच ने १९वीं शताब्दि के अंत में सही अर्थ में संगीत को अपनी उच्च श्रेणी में बिराजमान होने के लिए गतिमान कर दिया था ।

संगीत के प्रति समाज में अप्रतिष्ठा की भावना, संगीतकारों की होनेवाली अवहेलना तथा संगीत प्रेमी और संगीत-शिक्षा पाने के इच्छुक विद्यार्थीयों को संगीत सीखने में होनेवाली असुविधा या दुर्लभता इन सभी बातो को ध्यान में रखते हुए मौलाबक्ष ने कुछ ठोस कार्य किये । उनका मानना था कि अधिकांश गायक मनमौजी होते हैं । वे अपनी कला किसी को भी खुले दिल से नहीं सीखाते । यदि गायक स्वयं सदाचारी तथा निःस्वार्थी होंगा, तभी समाज में इस कला के प्रति आदर बढ़ेगा । मौलाबक्ष को यह पता था कि हाथ में तानपुरा लेकर द्वार-द्वार घुमने से बहेतर है कि "गायन शाला" खोलना । इसी संकल्प के साथ अपने विचारों को अमल में लाने की दृष्टि से प्रयत्न आरंम्भ किए । संगीत शिक्षा की इस समस्या पर मौलाबक्ष ने चिन्तन-मनन करके इसका निराकारण करने का संकल्प लिया था ।

संगीत शिक्षा के तत्कालीन स्वरुप ने तथा संगीत के भिन्न क्षेत्रों में पनपते मतभेदों ने मौलाबक्ष को "संगीत का एक आदर्श स्वरुप हो" "संगीत की शिक्षा एक विशिष्ट पद्धति से हो"; जिससे सभी समस्याओं का समाधान हो सके इस बात पर सोचने के लिये मजबूर कर दिया था ।

मौलाबक्ष के सामने कई चुनोतियाँ थी । उस काल में संगीत की शिक्षा का संचालन केवल घरानेदार उस्तादों के हाथ में था । वे काफी गुप्त तरीके से केवल

अपने घर के लोंगों को ही सीना-ब-सीना तालीम देते थे । अधिक से अधिक एक-दों या तीन शिष्यों को सिखाई जानेवाली गुरुमुखी इस क्लिष्ट विद्या को कंठस्थ करने के लिए शिष्यों को कई कठीनाईयों का सामना करना पड़ता था । आम लोगों के घरों में जहाँ संगीत का कोई वातावरण न था और न ही तो कोई करीबी उनका गुरु । इस परिस्थिति में सामान्य संगीत जिज्ञासु को संगीत सीखना दुर्लभ ही था ।

मौलाबक्ष और बड़ौदा नरेश, दोनों ही आधुनिक और प्रगतिशील विचारधारा के व्यक्ति थे । दोनों ब्रिटीशरों की सामूहिक शिक्षा प्रणाली से काफी प्रभावित हुए थे । मौलाबक्ष संगीत के क्षेत्र में परंपरागत, रुढ़िवादी एवं घरानेदारों की संकुचित सोच से परे कुछ अलग शिक्षा-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे ।

मौलाबक्ष ने इस दिशा में सोचना शुरु किया कि क्या हम इस गुरुमुखी सिखाई जानेवाली संगीत विद्या को ब्रिटिश शैली की भाँति सामूहिक विद्या-प्रणाली से सिखा सकते है? अतः मौलाबक्ष ने भारतीय संगीत को पाश्चात्य शैली की "स्कुली शिक्षा" की चौखट में बाँधने का प्रयत्न किया ।

मौलाबक्ष ने काफी अभ्यास एवम् अनुसंधान के पश्चात बड़ौदा में १ फरवरी, १८८६ के दिन गायन शाला कि स्थापना की थी ।"[२३] उल्लेखनिय है कि इस ऐतिहासिक दिन को बड़ौदा के सरकारी वार्षिक अहवाल में "Intresting and novel institute on this side of the bombay presidency" "Professor Maulabux, the well-known scitific native musician, was placed in charge of this school" के नाम से दर्ज किया गया है ।"[२४] प्रायोगिक स्तर पर शुरु की जानेवाली इस "गायनशाला" का निर्माण हुआ । तब मौलाबक्ष के मन में यह डर था कि क्या मेरी यह सोच या प्रयोग सफल होगा? विद्यार्थी इस गायनशाला में संगीत सीखने आएँगे या नहीं ? इसी भय के कारण शुरुआती दौर

में मौलाबक्ष ने महाराजा कि सहायता से केवल १२ लडकों के लिए कक्षा का निर्माण करवाने की विनति की और साथ-साथ विद्यार्थीयों को संगीत सिखने के प्रति आकर्षित करने हेतु ६ छात्रवृत्तियों को देने का भी आयोजन किया गया था । किन्तु मौलाबक्ष की खुशी की कोई सीमा न रही । जब इस गायनशाला के खुलते ही उसमें प्रवेश के लिए ७० विद्यार्थीयों ने आवेदन दिया था । विद्यार्थीयों की शुरुआती प्रवेश के लिये परीक्षा की प्रक्रिया के बाद ३० विद्यार्थीयों को संगीत सिखने के लिए प्रवेश दिया गया ।"[२५]

प्रायोगिक स्तर पर शुरु की जानेवाली इस संस्था की परिकल्पना के बारे में मौलाबक्ष ने बहुत सोच-समझकर कई सराहनीय निर्णय लिए थे, जिसके फलस्वरूप बालकों में संगीत के संस्कार उजागर करने हेतु ५वीं कक्षा तथा उससे उँचे स्तर के वयस्क बालकों को गायनशाला में प्रवेश दिया जाता था । बच्चों की स्कूली शिक्षा में किसी भी प्रकार की अड़चन उपस्थित न हो इसका भी पूरा ध्यान रखा गया । और इसीलिए गायन शाला का समय शाम को ६ से ८ बजे तक का रखा गया । विद्यार्थीयों में संगीत के प्रति आकर्षण बढ़ाने हेतु संगीत शिक्षा मुफ्त में दी जाती थी । खुद मौलाबक्ष विद्यार्थीयों को संगीत शिक्षा देते थे।"[२६] बालकों को संगीत सिखने एवं समझने में आसानि हो इसीलिए बड़ौदा में बोली जाने वाली गुजराती, मराठी, हिन्दी इत्यादि देशी भाषाओं में संगीत को सीखाना आवश्यक समझा गया था । शुरु के दिनों में "छोकराओं नी गायन-शाला" यानी कि "बालक गायन-शाला" के नाम से इस संगीत संस्था का नामकरण किया गया था ।

मौलाबक्ष घिसुखान स्वयं संगीत शिक्षा के लिए चिन्तनशील थे । उन्होंने स्टाफ नोटेशन के अभ्यास के बाद गायन-शाला में स्वर लेखन पद्धति का विचार भी कार्यान्वित किया तथा अपनी आविष्कार की गई स्वरलिपि में संगीत

के पाठ्य पुस्तकों का निर्माण करने का महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कार्य भी किया ।

मौलाबक्ष द्वारा संस्थापित इस गायन-शाला के मुख्य तीन उद्देश्य थे-

१. एक आभूषण के रुप संगीत का ज्ञान देना ।

२. लोगों में संगीत के प्रति अभिरुचि पैदा करना ।

३. संगीत एवं संगीत शास्त्रों के पुनर्जीवन के लिए प्रयास करना ।"[२७]

मौलाबक्ष द्वारा गायन-शाला में सिखाई जानेवाली बन्दिशों में आध्यात्मिकता, संस्कार सिंचन, राजा और राष्ट्र प्रेम, शरीर-विज्ञान इत्यादि विषयों पर गायन की बन्दिशों की रचना करके बालकों के मन में संगीत कि पवित्रता को उजागर करने का सराहनीय प्रयत्न किया गया । अन्य सामान्य स्कूली शिक्षा के साथ-साथ संगीत की शिक्षा एवं उसके जिर्णोद्धार की मौलाबक्ष की परिकल्पना से बड़ौदा नरेश भी बहुत प्रभावित हुए ।

उल्लेखनिय है कि १ फरवरी, १८८६ को मौलाबक्ष द्वारा प्रायोगिक स्तर पर शुरु की जानेवाली गायन शाला को शासन की ओर से केवल छ माह के लिए अनुमति दी गई थी । सरकार द्वारा ऐसा तय किया गया था कि यदि इन छ माह के भीतर मौलाबक्ष की गायन शाला का प्रयोग सफल रहा तभी गायनशाला को स्थायी रुप से कार्यरत करने पर विचार किया जाएगा ।

मौलाबक्ष के अथक प्रयत्न एवं संशोधन के फलस्वरुप गायन शाला की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी । ३० छात्रों से शुरु कि गई इस गायनशाला में अब सौ से अधिक विद्यार्थीयों ने संगीत शिक्षा हेतु अर्जी की थी ।

अगस्त, १८८६ में गायनशाला को दी गई छ माह की अवधि पूर्ण होने के बाद श्रीमंत महाराजा की आज्ञा से गायनशाला के आकलन के लिए कुशल गृहस्थों एवं संगीतज्ञों की समिति की रचना की गई। समीति द्वारा गायनशाला के छात्रों की परीक्षा लेने का आयोजन किया गया। समिति द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि विद्यार्थी संगीत में रुची ले रहे थे। उनकी परीक्षा का परिणाम भी संतोषजनक था। समिति द्वारा दिये गये लिखित रिपोर्ट के आधार पर महाराजा ने डायरेक्टर ऑफ वर्नाकुलर इन्स्ट्रक्शन से अपना अभिप्राय मँगवाया। अभिप्राय के आधार पर गायनशाला से संबधित तीन प्रश्नों का निकाल करना आवश्यक समझा गया-

१. गायनशाला को स्थायी करना अथवा कुछ और समय तक उसका आकलन किया जाना चाहिए।

२. प्रोफेसर मौलाबक्ष को अपने कार्य के बदले में प्रतिमाह ५० रुपये और अन्य ५ सहायक शिक्षकों को १० रूपये का वेतन दिया जाए। रोशनाई खर्च और वाद्य सामग्री इत्यादि के लिए ५ रुपये प्रतिमाह, कुल मिलाकर ११० रूपये प्रतिमाह मंजूर किया जाए।

३. प्रोफेसर मौलाबक्ष द्वारा संगीत की पाठ्य पुस्तको के प्रकाशन के विषय में विचार कर के मंजुरी देना। शाला में विद्यार्थीयो की अधिकतम संख्या कितनी हो ? यह निश्चित किया जाए। प्रतिमाह ३ रुपये की कुल ६ छात्रवृत्ति, कुल मिलाकर १८ रूपये की छात्रवृत्ति को मंजूर करना इत्यादि।

उपर्युक्त तीनों प्रश्नों पर महाराजा द्वारा विचार विमर्श किया गया। मौलाबक्ष के कार्य संचालन से संतुष्ट होकर यह निर्णय लिया गया कि गायन

शाला को स्थायी रुप से कार्यरत होने की मंजूरी दे दी जाए । मौलाबक्ष को गायनशाला का पूर्ण संचालन सौंप दिया गया । मौलाबक्ष को प्रिन्सिपाल के पद पर नियुक्त करके उनकी देखरेख में ५ सहायक शिक्षकों की नियुक्ती की गई । वाद्य सामग्री एवं गायनशाला के रखरखाव के लिए मंजूरी दी गई ।

मौलाबक्ष के लिए ४० रुपये का वेतन तय किया गया । गायनशाला में प्रवेश हेतु छात्रों की संख्या को निश्चित न करते हुऐ, अधिक से अधिक छात्रों को प्रवेश दिया जाए । छात्रो की संख्या के अनुसार इतर व्यवस्था तथा वेतन में वृद्धि एवं कटौती करने का नियम भी बनाया गया ।

गायनशाला के प्रारंभ के दिनों में छात्रों की संतोष जनक संख्या होगी या नहीं इस संशय के कारण छात्र वृत्ति देने का आयोजन किया गया था । भविष्य में यदि छात्रों की संख्या में वृद्धि होती है तो छात्रवृत्ति देने की विशेष जरुरत नही । यदि आने वाले छात्रों में कोई छात्र अधिक बुद्धिमान है और गायन विद्या सीखने में उसकी अधिक रुचि है तो ऐसे छात्रो को छात्रवृत्ति अवश्य दी जाए । किन्तु यह कार्य काफी सँभलकर करना उचित माना गया । मौलाबक्ष द्वारा स्थापित गायनशाला के प्रयोग से संतुष्ट होकर गायनशाला के लिए १२०० रुपये का वार्षिक खर्चा मंजूर किया गया ।"[२८]

मौलाबक्ष द्वारा स्थापित गायनशाला ने अल्प समय में ही ख्याति अर्जित कर ली । सन् १८८६ में बारह छात्रों से शूरु की गई इस गायनशाला में सन् १८८८ में सौ से अधिक छात्रों का प्रवेश हो चुका था । बढ़ती संख्या को देखते हुए संगीत के अतिरिक्त चार वर्ग खोले गए ।"[२९]

उपर्युक्त नियमों के अनुसार गायनशाला को चलाना बहुत कठिन कार्य था । अभी भी मौलाबक्ष को गायनशाला को पूर्णतः सफल बनाने के लिए कई

चुनौतियों का सामना करना बाकी था । उस में से एक चुनौति थी उनके दरबारी एवं प्रतिस्पर्धी कलाकार उस्ताद फैज महम्मदखान । फैज महम्मदखान ने भी मौलाबक्ष के पद्चिहनों पर चलते हुऐ अपनी एक संगीत शाला कि स्थापना कि थी । दोनों ही विद्वान कलाकार अपनी संगीत शिक्षा संस्था को पुरे बड़ौदा राज्य में प्रचलित एवं प्रस्थापित करना चाहते थे । गायन के अतिरिक्त विभिन्न संगीत वाद्यों की भी शिक्षा शुरु करना, दोनों का ध्येय था । वे अपने संगीत विद्यालय को अधिक से अधिक सुविधा–सम्पन्न बनाना चाहते थे । इन सभी बातों के लिए महाराजा से आर्थिक सहायता के लिए दोनों कलाकारों में हमेंशा स्पर्धात्मक वातावरण होता रहता था ।

सन् १८८७, जी सरदेसाई जो कि महाराजा के अंगत सचिव के पद पर नियुक्त हुए थे । सरदेसाई के पत्रों द्वारा, यह पता चलता है कि, दोनों ही मुस्लिम कलाकार जब उनसे मिलने के लिए आए तब वे दोनों ही सरकारी नौकर थे । दोनो खानों का झगड़ा सरदेसाई तक पहुँचा । दोनों ही सरदेसाई को कुछ भी न बताकर सीधे महाराजा से मिलकर अपनी मांगो को पूरा करना चाहते थे । उनकी भाषा भी पुरी तरह से सरदेसाई की समझ में नहीं आ रही थी । फिर भी सरदेसाई को समझ में आया कि मौलाबक्ष अपने विद्यालय में जलतरंग और फैज महम्मद अपने विद्यालय में सितार वाद्य को सीखाने की मंजूरी के लिए महाराजा से मिलना चाहते थे ।

दोनों के व्यक्तित्व एवं उनके संगीत शिक्षा देने की शैली में काफी अन्तर था । मौलाबक्ष जहाँ अपनी गायन शाला में पाश्चात्य सामूहिक शिक्षा पद्धति के अनुसार संगीत और उसका शास्त्र सीखा रहे थे; वहीं फैज महम्मद अपने संगीत शाला में परंपरागत घरानेदार शैली से सीना-ब-सीना संगीत की शिक्षा दे रहे थे ।

महाराजा ने दोनों ही कलाकारों की माँंगो को मंजूर करते हुए, दोनों को अपनी-अपनी सोच से खुद के संगीत शाला चलाने के लिए आर्थिक सहाय एवं पर्याप्त जगह प्रदान की थी ।"[३०] सन् १८८८ तक दोनों ही स्कूल सफलतापूर्वक अपना कार्य कर रहे थे । इससे प्रेरित होकर महाराजा ने सन् १८८९ में और एक गायनशाला को बड़ौदा से बाहर "पाटण" शहर में खोलने कि मंजूरी दे दी । उसके कुछ ही सालों के बाद सन् १८९१ में "नवसारी" शहर में एक दुसरा स्कुल खोला गया । गुजराती और मराठी भाषी लड़कियों के लिए भी संगीत कि दो कक्षाएँ शुरु कि गईं । लड़कों के लिए खोली गईं चार शालाओं में से दों प्रमुख शालाएँ मुख्य शहर में ही थी, जिनमें से पहली रावपुरा और दुसरी दांडिया बाजार विस्तार में कार्यरत थी । बाकी के दों स्कूल बड़ौदा शहर से बाहर पाटण और नवसारी में कार्यरत थी । मौलाबक्ष अपनी स्कुल को रावपुरा में और फैज महम्मद अपनी स्कुल को दांडिया बाजार विस्तार में चलाते थे ।

सन् १८९२ सिंतबर में मौलाबक्ष द्वारा तांजोर नृत्य की खास कक्षा भी शुरु कि गई और जिसे मौलाबक्ष की गायन शाला के साथ जोड़ा गया । जिसमें पाँच छात्राओं का प्रवेश हुआ था । समाज में नृत्य सिखने की संकुचित मानसिकता के कारण उसे अच्छा प्रतिसाद नहीं मिला । दुर्भाग्यवश छात्राओं कि कम संख्या के कारण बहुत जल्द ही नृत्य विभाग को बंद करना पड़ा ।"[३१]

मौलाबक्ष और फैज महम्मद की संगीत-शालाएँ अच्छी चल रही थीं । किन्तु फैज महम्मद के मुकाबले मौलाबक्ष का नजरिया अधिक सुव्यवस्थित और आधुनिक था । सन् १८९३ में मौलाबक्ष के स्कूल में ३५३ लड़कों और १०८ लडकियों का संगीत सीखने हेतु पंजीकरण हो चुका था ।"[३२] मौलाबक्ष द्वारा गायनशाला में संगीत के पाठ्य पुस्तकों का भी प्रकाशन किया गया था । मराठी गीत, गुजराती गरबा, उर्दू की गजलों के साथ-साथ अंग्रेजी गीत रचनाए जैसे

"Home sweet Home", "Gaily the Trou badour", "God save the Maharja" इत्यादि विविध भाषी रचनाओं को भी संगीत के पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया गया था ।"[३३]

सन् १८९५ में सरकार द्वारा दोनों संगीत स्कूलों की कार्य कलापों का आकलन किया गया था । सरकारी आकलन अनुसार फैज महम्मद का विद्यालय वैसा कुछ खास नही कर पा रहा था जैसा कि मौलाबक्ष का स्कूल । मौलाबक्ष के स्कूलों में विद्यार्थीयों कि संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही थी । स्कूल खोलने के शुरुआती दिनों से दस वर्ष के भीतर मौलबक्ष स्थापित स्कूल कि लोकप्रियता काफी बढ़ चुकी थी । दुर-दुर से विद्यार्थी इस संस्था में संगीत सिखने के लिए आते थे ।

सन् १८९५ में ली गई वार्षिक परीक्षा में मौलाबक्ष के स्कुल के ९४ विद्यार्थीयों में से ७६ विद्यार्थी उत्तीर्ण हो चुके थे; जबकि फैज महम्मद के स्कूल के इससे आधे विद्यार्थीं भी परीक्षा प्रक्रिया में उत्तीर्ण नही हुए थे । मौलाबक्ष के स्कूल की तुलना में फैज महम्मद के स्कूल में विविधता एवं आधुनिकता का अभाव और छात्रों कि कम संख्या के कारण उनकी स्कूल को पाँच वर्षो के भीतर ही बन्द करना पड़ा । आखिर फैज महम्मद ने संगीत की स्कूली शिक्षा के क्षेत्र को छोड़ दिया और बादमें बड़ौदा राज्य कि सभी संगीत शिक्षा संस्थानो का संपूर्ण कार्य संचालन मौलाबक्ष और उनके पुत्रों के हाथो में आ गया ।"[३४]

२.५ वाद्य-शिक्षण में उस्ताद मौलाबक्ष का योगदान

१९ वीं शताब्दी की शुरुआत में कुछ कलाकारों द्वारा संगीत के पुनरुत्थान के भाग के स्वरुप संगीत के लिए विद्यालयीन शिक्षण को आवश्यक माना गया । बंगाल तथा पश्चिम भारत में कई जगह संगीत शिक्षा हेतु विद्यालयों की स्थापना की गई । इन विद्यालयों में "स्टूडेंट्स लिटररी एन्ड सायंटिफिक सोसायटी"

(१८४८), "गायन उत्तेजक मंडली" (१८७०), "पूना गायन समाज" (१८७४), "बंगाल स्कूल ऑफ म्यूजिक" (१८८१)।

ये संस्थाएँ संगीत शिक्षा में काफी सफल रहीं थी। आम लोग अनौपचारिक रुप से भी किसी न किसी रुप में गायन क्रिया करते रहते थे। गायन कला समाज में अत्याधिक प्रचलित थी। तकनीकी दृष्टि से देखें तो उसका शिक्षण भी प्रमाण में सरल था। इन सभी बातों को ध्यान में लेते हुए १९ वीं शताब्दी में खोली गई अधिकतर स्कूलों में गायन शिक्षा को ही प्राधान्य दिया जाता था। विभिन्न प्रकार के संगीत वाद्यों को सिखाने की दृष्टी से समाज में अभी भी उदासिनता का माहोल दृष्टीगोचर हो रहा था। इन में वादन कला के विद्यार्थी अगर रहे भी, तो उनको गायक गुरुओं से ही शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी, क्यों की यहाँ विभिन्न प्रकार के संगीत वाद्यों को सिखाने के लिए गुरुजन आसानी से उपलब्ध नहीं होते थे।

सन् १८८६ में बड़ौदा में उस्ताद मौलाबक्ष ने महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय के सहयोग से "गायन शाला" नामक सार्वजनिक संगीत विद्यालय की स्थापना की। उल्लेखनीय है कि उस्ताद मौलाबक्ष स्वयं उत्तर हिन्दुस्तानी तथा दक्षिण हिन्दुस्तानी दोनों संगीत पद्धतियों की गायन तथा वादन विद्या के उच्च कोटि के कलाकार थे। उन्होंने अपने पुत्रों तथा शिष्यों को भी इन कलाओं में पारंगत किया था। प्रारंभ में इस विद्यालय में भी शुरुवात में गायन विषय की ही शिक्षा दी जाती थी।

समाज में अभी भी वादन कला की शिक्षा के प्रति उचित प्रतिभाव नहीं मिल रहा था, जो उस्ताद मौलाबक्ष को उचित नहीं लगता था। गायन शिक्षा का प्रयोग अत्यंत सफल रहने पर मौलाबक्ष और उनके पुत्रों ने मिलकर इस विद्यालय में वाद्य-विभाग भी शुरु किया। सन् १८८८ से मौलाबक्ष कि गायनशाला में

सितार, फिडेल, हारमोनियम, जलतरंग तथा तबला जैसे वाद्यों का प्रशिक्षण दिया जाने लगा । अन्य तत्कालीन विद्यालयों से विपरीत इस विद्यालय में इन सभी वाद्यों के निष्णांत वादको को ही शिक्षक के रुप में नियुक्त किया गया था । उस समय कई जगह गायक कलाकार ही वादन की भी शिक्षा देते थे, अथवा एक ही वादक द्वारा सभी वाद्यों की तालीम दी जाती थी । किन्तु उस्ताद मौलाबक्ष द्वारा वादन कला के तकनीकी पक्ष को समझते हुए अपने विद्यालय में विभिन्न प्रकार के वाद्यों की शिक्षा के लिए वाद्यो के अनुरुप निष्णांत शिक्षक का होना अनिवार्य माना गया था । सराहनीय बात यह थी कि इस विद्यालय में शिक्षक अत्यंत उमदा दर्जे के थे, महाराजा सयाजीराव के दरबार के उच्च कोटि के घरानेदार कलाकारों को आश्रय दिया गया था । जिनका कार्य दरबार में अपनी प्रस्तुति के द्वारा मनोरंजन प्रदान करना होता था । साथ-साथ उनसे मौलाबक्ष की गायनशाला तथा राज परिवार के सदस्यों को भी संगीत शिक्षा प्रदान करने का कार्य अनिवार्य समझा गया था । गायनशाला में मौलाबक्ष के मार्गदर्शन में कलावन्त खाते में नियुक्त घरानेदार कलाकारों द्वारा योजनाबध्ध, तर्कपुर्ण एवं वैज्ञानिक रुप से संगीत शिक्षा दी जाती थी, जिससे विद्यार्थीयों को दुगुना लाभ प्राप्त होता था । ज्ञान उन्हें घरानेदार कक्षा का मिलता था । लेकिन तरीका विद्यालयीन होने से सीखने में सुगमता रहती थी । वादन शिक्षा के लिए आवश्यक वाद्य खरीदने के लिए भी महाराजा सयाजीराव का आर्थिक सहयोग उन्हें प्राप्त हुआ था ।

उस्ताद मौलाबक्ष के मार्गदशन में उनके ज्येष्ठ पुत्र मुर्तज़ाखान पठाण, नाती इनायत खान, शिष्य उस्मान खान, गणेश बापट, मिनप्पा केल्वाडे इत्यादि द्वारा गायन शाला में छात्रों को न केवल विभिन्न वाद्यों का प्रत्यक्ष रुप से प्रशिक्षण दिया जाता था, किन्तु साथ-साथ विविध वाद्यों के तकनिकी पक्ष एवं उसकी शिक्षा विधी को अधिक स्पष्ट रुप से समझाने के लिए पुस्तकों का प्रकाशन भी किया गया था । इन पुस्तकों में "सितार शिक्षक", "ताल पद्धति", "इनायत

हार्मोनियम शिक्षक", "इनायत फिडेल शिक्षक", इत्यादि पुस्तकों द्वारा विविध वाद्यों की सुव्यवस्थित रुप से शिक्षा दी जाती थी ।"[३५]

उल्लेखनीय है कि उस वक्त हार्मोनियम, वायोलिन जैसे वाद्यों को पाश्चात्य वाद्यों की श्रेणी में रखा गया था एवं घरानेदार कलाकारों द्वारा भारतीय संगीत में इस वाद्यों के प्रयोग की उपेक्षा की जाती थी । हार्मोनियम वाद्य भारतीय राग संगीत के लिए उपयुक्त वाद्य नहीं है और भारतीय संगीत को इस वाद्य का निषेध करना चाहिए, ऐसी सोच प्रवर्तमान थी । किन्तु दीर्घद्रष्टा मौलाबक्ष ने इस आधुनिक वाद्य की महिमा को समझते हुए न केवल इसे अपनाया किन्तु अपने पुत्रों एवं शिष्यों को इस वाद्य को सिखने व सिखाने के लिए प्रेरित किया । अनेक विरोधों के बावजूद मौलाबक्ष द्वारा इस वाद्य को अपने गायनशाला की शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया गया । वर्तमान समय में हार्मोनियम भारतीय संगीत का एक अभिन्न अंग बन चुका है, जिसका श्रेय मौलाबक्ष जैसे विद्वानों को दिया जाए तो अनुचित न होगा ।

आगे चलकर मौलाबक्ष कि प्रेरणा से उनके द्वितीय पुत्र अलाउद्दीन खान पठाण, ने लंडन स्थित "रॉयल म्युझीक अकादमी" से पाश्चात्य संगीत का डिप्लोमा अर्जित किया था । पाश्चात्य संगीत में इस प्रकार की उपाधि प्राप्त करने वाले वे प्रथम भारतीय कलाकार माने जाते है । सन् १९९७ में बड़ौदा लौटने के पश्चात् अलाउद्दीन खान पठाण को "कलावंत कारखाने" के अधीक्षक के पद पर नियुक्त किया गया । भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के संगीत में निपुण अलाउद्दीन खान ने अपने ग्यारह वर्ष के कार्य काल में गायनशाला में कई नई विचारधाराओं को प्रस्थापित किया एवं गायनशाला को पूरे भारत में प्रचलित किया । सन् १९०५ से विविध वाद्यों में प्रवीणता हासिल करने वाले छात्रों को भी गायन विषय के भाँती डिप्लोमा कि उपाधि एवं प्रमाणपत्र से पुरस्कृत किया जाने

लगा । प्रगति करने वाले छात्रों को प्रसंगानुरुप विशेष छात्रवृत्ति देकर वाद्य सिखने के प्रति प्रेरित किया जाता था ।"[३६]

सन् १९०८ से गायनशाला में भारतीय वाद्यों सितार, दिलरुबा, जलतरंग इत्यादि के साथ-साथ पाश्चात्य् वाद्यों के प्रशिक्षण के लिए भी अलग वर्ग शुरु किये गए । पियानो, पिकोलो, यूफोनियम, कोरोनेट, टेनोर ट्रोम्बोन एवं बेरीटॉन सिगिंग इत्यादि पाश्चात्य वाद्यों का प्रशिक्षण देना इस गायनशाला की अनोखी खूबी थी । केवल एकल गायन व वादन पर ध्यान केंद्रित न करते हुए गायन के साथ सितार, फिडेल, हार्मोनियम तथा तबला जैसे वाद्यों कि संगत किस तरह की जाए इसकी प्रायोगिक शिक्षा भी नियमीत रुप से छात्रों को दी जाती थी । इन वाद्यों को सीखने वाले छात्रों की क्रियात्मक एवं शास्त्र आधारित लिखित परीक्षाएँ भी आयोजित की जाती थीं ।"[३७]

मौलाबक्ष के परिवार का विदेश की और प्रयाण होने के बाद भी "कलावन्त कारखाने" में नियुक्त विभिन्न कलाकारों द्वारा इस वाद्य शिक्षा की परंपरा को अविरत प्रगतिशील रखने का कार्य किया गया । शहनाई, सारंगी, इसराज, दिलरुबा, ताऊस, पखावज जैसे दुर्लभ वाद्यों की भी शिक्षा व्यवस्था अस्तित्व में आयी । अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी कि गायन विषय की शिक्षा के साथ-साथ अनेक वाद्यों की शिक्षा को भी एक ही संस्था में समानता से प्राधान्य दिया गया हो, ऐसी देश की दुर्लभ एवं गुणवत्तायुक्त संस्थाओं में मौलाबक्ष की इस गायनशाला का प्रमुख स्थान था । गायन के साथ-साथ विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्यों की वादन शिक्षा के प्रयोग भी काफी सफल रहा और समाज में उसे अच्छा प्रतिभाव प्राप्त हुआ ।"[३८]

१९ वीं और २० वीं शताब्दी में कई विद्वानों द्वारा संगीत के प्रशिक्षण हेतु स्कुल खोले गए थे । इन स्कूलो में मुख्यतः गायन विद्या सिखाने पर ही ध्यान

केंद्रित किया जाता था। बड़ौदा में उस्ताद मौलाबक्ष द्वारा स्थापित गायन शाला पश्चिम भारत में एक मात्र ऐसी संस्था थी, जहा गायन के साथ-साथ वादन शिक्षा को भी उतना ही महत्व दिया जाता था।

मौलाबक्ष से प्रेरणा पाकर कालांतर में कई संगीत विद्यालयों की स्थापना की गई जिसमें गायन के साथ-साथ वादन शिक्षा को भी महत्व दिया गया। वादन कला में उत्कृष्ट व आधुनिक कला प्रशिक्षण की नींव रखने वाले मौलाबक्ष देश प्रथम कलाकार थे ऐसा मानना अनुचित नहीं होगा।

२.६ वृन्द-वादन के विकास में उस्ताद मौलाबक्ष का योगदान

वर्तमान समय में भारत में वृंद वादन का प्रमाण बढ़ता जा रहा है। हमारे प्राचीन संगीत ग्रंथो में किये गए वर्णन के अनुसार, वाद्य वृंद को "कुतप" कहा जाता था। परन्तु प्राचिन कुतप का स्वरूप वर्तमान वाद्य वृंद से काफी भिन्न था। वर्तमान समय में जो वृंदवादन होते हैं, वे पाश्चात्य संगीत से अधिक प्रभावित हैं, ऐसा दृष्टि गोचर होता है। वाद्य वृंद या वृंद वादन, इस परिकल्पना को शिक्षा एवं प्रस्तुति क्षेत्र में प्रस्थापित करने में उस्ताद मौलाबक्ष का महत्वपूर्ण योगदान है।

सन् १८८१ में महाराजा सयाजीराव तृतीय सत्ता आरुढ़ होते ही, उन्होंने एक विशेष उद्देश्य से मौलाबक्ष को अपने दरबार में आमंत्रित किया था। बड़ौदा शहर बोम्बे तथा दिल्ली रेल्वे लाइन से सीधा जुड़ा होने के कारण, सेना के अनौपचारिक अवसरों तथा विभिन्न उत्सवों के अवसर पर ब्रिटीश शासक एवं उनके विशिष्ट महेमानों का बार-बार बड़ौदा में अतिथिगमन हुआ करता था। अंग्रेजों से अच्छे संबंध प्रस्थापित करने हेतु, उनके मनोरंजन के लिए कई कार्यक्रमों के आयोजन किये जाते थे, जिसमें सांगीतिक कार्यक्रम भी समाविष्ट होते थे। अंग्रेज भारतीय संगीत को समझने में असमर्थ थे। अतःअंग्रेजों की

संस्कृति एवं उनकी रुचि को ध्यान में रखते हुए महाराजा को वाद्य वृंद की आवश्यकता महसूस हुई । महेमानों के मनोरंजन के लिए हरबार बैन्ड को बाहर से बुलाने में काफी समय और पैसे का व्यय होता था ।इसीलिए महाराजा ने बैन्ड कि जरुरत को समझते हुए सुरसागर तालाब के पास बैन्ड स्कुल की स्थापना की, और बैन्ड कि निर्मिती तथा उसके संचालन का कार्य करने के लिए मौलाबक्ष को आमंत्रित किया और उनसे वाद्य वृंद की रचना करने के लिए विनती की । महाराजा की आज्ञा का पालन करते हुए मौलाबक्ष ने भारतीय स्वर वाद्यों एवं कुछ पाश्चात्य ताल वाद्यों की सहायता से वाद्य वृंद कि रचना की और अपनी आविष्कार की गई स्वरलिपि में बैन्ड के अनुरूप कई सांगीतिक रचनाओं को स्वरलिपिबद्ध किया ।"[३९] उस वक्त इस प्रकार का यह एक दुर्लभ कार्य था, जिसमें किसी भारतीय संगीतज्ञ द्वारा बैन्ड बनाने का प्रयास किया गया हो । मौलाबक्ष के कुशल संचालन के कारण अल्प समय में ही यह बैन्ड काफी प्रचलित भी हुआ था । अन्य राज्यों से भी मौलाबक्ष के बैन्ड को प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया जाता था । बैन्ड की रचना के अनुभव से मौलाबक्ष को जल्द ही यह महसूस हुआ कि भारतीय कलाकार केवल एकल गायन-वादन की परंपरा के ही आदी बन चुके है । घरानेदार कलाकार वाद्य वृंद में अपनी प्रस्तुति देना खुद की कला का अपमान समझते है । हर एक कलाकार स्वयं को एक विद्वान रचयिता समझता है । तथा किसी एक संचालक के अनुशासन में कार्य करना उसे उचित नहीं लगता था । भारतीय कलाकारों में वाद्य वृंद के लिए आवश्यक अनुशासन, विनम्रता और ज्ञान की कमि मौलाबक्ष को दृष्टिगोचर हुईं । पढ़े लिखे कलाकारों की कमी एवं स्वरलिपि का विरोध करने वाले कलाकारों को लेकर वाद्य वृंद की रचना करना मौलाबक्ष के लिए काफि दुष्कर कार्य रहा ।

मौलाबक्ष को यह भी महसूस हुआ की महाराजा की इच्छा अनुसार अंग्रेजों के मनोरंजन के लिए बनाया गया यह बैन्ड सही अर्थों में पाश्चात्य संगीत के

ओर्केस्ट्रा की शैली से बिलकुल विपरीत है । इस स्थिति में मौलाबक्ष को इस कार्य को जबरदस्ती करना एवं करवाना उचित नहीं लगा । मौलाबक्ष ने यह महसूस किया कि यदि पाश्चात्य शैली के वाद्य वृंद की संरचना करनी है तो, उसके लिए पाश्चात्य संगीत एवं उसके शास्त्र का ज्ञान होना अति आवश्यक है, और भारतीय संगीत के विद्वान मौलाबक्ष को पाश्चात्य ओर्केस्ट्रा का कोई विशेष ज्ञान नहीं था, अपितु उन्होंने महाराजा से विनती की, कि यदि राज्य के लिए उच्च स्तर के वाद्य वृंद या बैन्ड की रचना करनी है, तो पाश्चात्य संगीत का ज्ञान अर्जित करना बहुत जरुरी है । अतः मौलाबक्ष ने महाराजा से विनती की, कि अपने द्वितीय पुत्र अलाउद्दीन खान पठान को पाश्चात्य संगीत का ज्ञान अर्जित करने के लिए यूरोप में भेजा जाए । मौलाबक्ष की तर्क-संगत विनंती को मान्य रखते हुए महाराजा ने सन् १८९२ में अलाउद्दीन खान पठान को विशेष छात्रवृत्ति देकर पाश्चात्य संगीत के अभ्यास हेतु लंडन स्थित "रॉयल म्युझीक ॲकेडमी "में भेजा गया । वहाँ अलाउद्दीन खान पठान ने पुरी लगन और महेनत से पाश्चात्य संगीत में स्वर्ण पदक के साथ डिप्लोमा का अभ्यासक्रम पूर्ण किया और मौलाबक्ष के सपने को साकार किया ।"[४०]

पाश्चात्य संगीत की शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् सन् १८९७ में अलाउद्दीन पठान के बड़ौदा लौटने पर उन्हें राज्य के बैन्ड मास्टर के पद पर नियुक्त किया गया । अलाउद्दीन पठान ने उत्तर हिन्दुस्तानी, दक्षिण हिन्दुस्तानी तथा पाश्चात्य, तीनों प्रकार के संगीत एवं संगीत वाद्यों के सुमधुर मेल से राज्य के लिए आला दर्जे के म्यूजिक बैन्ड की रचना की । इन वाद्य वृंद में पाश्चात्य संगीत के नियम अनुसार स्वर-रचना एवं विषय वस्तु आधारित धुनें, विभिन्न वाद्यों का प्रयोग, स्वरलिपि, बैठक व्यवस्था, पोशाक इत्यादि नियमों का चुस्ती से पालन किया जाता था । पाश्चात्य संगीत से अनभिज्ञ कलाकारों को पाश्चात्य संगीत की शिक्षा दी जाती थी । भारतीय संगीत के इतिहास में किसी भारतीय

कलाकार द्वारा पाश्चात्य संगीत से नियमों पर आधारित वाद्य वृंद या बैन्ड की रचना की गई हो, देश में ऐसा सर्वप्रथम तथा सफल प्रयोग बड़ौदा में ही उदयमान हुआ था ।

अब बड़ौदा में परंपरागत शैली के संगीत के साथ-साथ पाश्चात्य संगीत को भी आश्रय एवं प्रोत्साहन मिला । इन दिनों पाश्चात्य संगीत से दूरी बनाए रखने वाले अथवा उसे शोर या कोलाहल मानने वाले लोगों के मन में इस संगीत के प्रति रुचि पैदा करने में मौलाबक्ष एवं उनके पुत्र अलाउद्दीन खान पठान ने विशेष योगदान दिया । उन्होंने तीन प्रकार के बैन्ड बनाये थे । पहला भारतीय राग आधारित, दूसरा पाश्चात्य संगीत आधारित और तीसरा विविध धर्म के त्योहारों के गीतों पर आधारित था । इस बैन्ड से परोसा जानेवाला संगीत हल्का-फुल्का सा, प्रसंगों के अनुरुप हर इन्सान को पसंद आए ऐसा होता था । अलाउद्दीन पठान का यह बैन्ड काफि प्रचलित हुआ था । जिस तरह शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति के लिए अत्यंत शांत माहौल की आवश्यकता होती है । इसके विपरीत इस बैन्ड के कलाकार जनता के बीच, सार्वजनिक स्थानों, उद्यानों, सार्वजनिक समारोहों में अपनी प्रस्तुति देकर लोगों का मनोरंजन करते थे ।

भारतिय शास्त्रीय संगीत सबकों रुचिकर लगें, ऐसा जरुरी नहीं, इस हकीकत को समझते हुए बड़ौदा नरेश ने पाश्चात्य संगीत को केवल लोगों के मनोरंजन तक सिमित न रखते हुए पाश्चात्य संगीत कि शिक्षा देने का भी आग्रह रखा था । प्रोफेसर अलाउद्दीन खान पठान की विदेश प्रयाण के बाद बैन्ड शाला के शिक्षक मि.फ्रेडलिक्स ने गायनशाला के साथ-साथ बैन्ड के संचालन कि जिम्मेदारी को भी बखूबी निभाया । बाद में इन दों महानुभावों के उपरांत मि.वुड, उस्ताद भीखन खान और हिरजी भाई पात्रावाला जैसे विद्वानों ने भी वाद्य वृंद का

कूशलता पुर्वक संचालन किया और बड़ौदा में वाद्य वृंद की परंपरा को जिवित रखा ।

वृन्द वादन के क्षेत्र में पं.पलुस्कर, बाबा अलाउद्दीन खान, पं.रविशंकर, आदि कलाकारों का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है । उपर्युक्त कलाकारों के कई दशक पहले उस्ताद मौलाबक्ष और उनके पुत्र अलाउद्दीन खान पठान ने वाद्य वृंद कि निर्मिति एवं उसकी शिक्षा के क्षेत्र में सफल एवं सराहनीय कार्य किया । अतः जहाँ भारत में केवल परंपरागत एकल गायन वादन की संगीत प्रस्तुती को ही सराहा व समझा जाता था, अब इस नवीन पाश्चात्य संगीत आधारित वाद्य वृंद एवं समुह गायन की कला को भी बड़ौदा में विशेष आदर सम्मान प्राप्त हुआ था ।

२.७ उस्ताद मौलाबक्ष की समकालीन संगीत शालाएँ

समाज में रहनेवालें आम लोंगो के लिए स्कूलों द्वारा संगीत शिक्षा देने कि दिशा में १९ वीं शताब्दी में कई समाजसुधारकों, संगीतज्ञों द्वारा सराहनिय प्रयत्न किये गए । बड़ौदा के अलावा कलकत्ता, बम्बई जैसे शहरों मे भी संगीत स्कूलों की स्थापना कि गई थी ।

१९ वीं शताब्दी शालाकिय संगीत शिक्षा कि दिशा में नई रोशनी लेकर आया था । मौलाबक्ष के समय में देश में ऐसी कई छोटी-छोटी संगीत संस्थाएँ कार्यरत थी, परन्तु यहाँ पर केवल पश्चिम भारत में कार्यरत प्रमुख संगीत संस्थाओं का ही विवरण दिया गया है ।

इस महान क्रांतिकारी कार्य में निम्न लिखित संस्था एवं संस्थापकों ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया, जिसका संक्षिप्त में विवेचन किया गया है ।

स्टुडन्टस् साइंटिफिक एंड लिटरेरी सोसायटी

Student's scientific and literary society (SLSS)

इस स्कूल कीं स्थापना वर्ष १८४८, जून माह में बम्बई में कीं गई थी, जिसके संस्थापक चार पारसी गृहस्थ थे; जिनका नाम दादाभाई नवरोजी, नवरोजी फुरदुंजी, सोराबजी शापुरजी बंगाली और भाऊदाजी इत्यादि। इन चारों गुणीजनों द्वारा स्थापित यह संगीत शाला पारसि, गुजराती और मराठी संप्रदाय के विद्यार्थियों के संगीत शीक्षा देने हेतु शुरु कीं गई थी। एक अभ्यासानुसार यह पश्चिम भारत की सर्वप्रथम स्वयंसेवी सांगीतिक संस्था थी। महिलाओं की संगीत में रुचि उत्पन्न करना और उन्हें भारतीय पवित्र एवं पौराणिक संगीत सीखने और समझने के लिये आकर्षित करना इस संस्था का मुख्य ध्येय था।

सन् १८४९ से १८५१ के बीच बम्बई के कई शहरों में पारसि, मराठी और गुजराती संप्रदाय की कन्याओं को संगीत शिक्षा देने हेतु इस संस्था द्वारा संगीत के वर्ग खोले गये थे। शुरुआत में इस संस्था में मुस्लिम कन्याओं को प्रवेश नहीं दिया जाता था। मुंबई में मुस्लिमों की जनसंख्या पारसिओं से अधिक होने के बावजूद, उनका यह फैसला काफी आश्चर्यजनक था। इस संस्था द्वारा कन्याओं को शिक्षित करने हेतु अंकगणित, चित्रकला, स्वास्थय एवं संगीत विषयों की छोटी पुस्तकें भी प्रकाशित की गई थीं। संगीत विषय पर पुस्तक लिखने वालों को २०० रुपये का बक्षिस देकर सम्मानित किया जाता था। सन् १८६३ में संस्था के सचिव रावसाहब विश्वनाथ मण्डलिक ने स्कूलों के पाठ्यक्रम में संगीत विषय को नियमित रुप से दाखल करने का सुझाव दिया तथा संगीत की शिक्षा को व्यवस्थित ढाँचे में बिठाकर, स्वरलिपि और किताबों के माध्यम से संगीत की शिक्षा दी जाए, जिसके बारे में सोचा गया। संस्था के शिक्षक भाऊ शास्त्री अष्टपुत्रे ने सन् १८५० में "गायन प्रकाश" नामक पुस्तक लिखी, जिसमें राग-

रागीनियों के इतिहास के बारे में प्रकाश डाला गया था । किन्तु मण्डलीक कुछ अधिक बेहतर करना चाहते थे ।

मण्डलीक ने अपने मित्र गोवर्धन विनायक छत्रे और उनके भाई नीलकंठ विनायक छत्रे को संगीत शिक्षा लक्षी पुस्तक तैयार करने के लिए विनती की । सन् १८६४ में छत्रे बंधुओं द्वारा "गीतिलिपि" नामक पुस्तक प्रकाशित की गई थी । "गीतिलिपि" में छात्राओं के संगीत शिक्षा के लिए कई मराठी गायनों को पाश्चात्य स्वरलिपि में लिपिबद्ध किया गया था; राग भैरवी में एक अभंग भी स्वरलिपि बद्ध किया गया था । प्रकाशित की गई इस पुस्तक में प्रयोग कि जाने वाली स्टाफ स्वरलिपि त्रुटिपूर्ण थी, किन्तु संगीत की प्रारंभिक जानकारी के लिए व उसे सिखाने-समझाने के लिए इस संस्था का यह प्रयत्न काफी सराहनीय था । दुर्भाग्यवश अर्थिक संकट के कारण सन् १८७३ में इस स्वंयसेवी संस्था को संगीत शिक्षा के वर्ग बंद करने पड़े । इसी संस्था की उपशाखा के रूप में सन् १८५७ में, दि पारसी गर्ल्स स्कूल एसोसिएशन कि स्थापना कि गई । सन् १८६० में समाज सुधारक नवरोजी फूरदूंजी और सोराबजी शापुरजी बंगाली को संयुक्त रुप से इस संस्था के सचिव के पद पर नियुक्त किया गया था । इस संस्था में सामाजिक दायित्व एवं सृदढ़ संस्कार देने हेतु कई गीतो की रचना करके उन्हें विद्यार्थीयों को संगीत सिखाया जाता था ।"[४१]

गायन उत्तेजक मण्डली

भारतवर्ष कीं इस लोकप्रिय संस्था को स्थापित करने का गौरव भी पारसी संस्थापको के नाम जाता है । १ अक्तुबर, १८७० में के.एन.काबरा जी द्वारा इस संस्था को मुंबई में "गायन उत्तेजक मण्डली" के नाम से शुरु किया गया । इस संस्था के दो प्रमुख उद्देश्य थे ।

१. "आर्यसंगीत"या "स्वदेशीय हिन्दू संगीत" को पारसी सम्प्रदाय में प्रचलित करना और

२. नैतिक सीख एवं संस्कार सिंचन करने वाले शास्त्रीय गीतों को उचित स्वर-ताल के माध्यम से सीखाना ।

इस संस्था के संस्थापक के.एन.काबराजी ने अपना समग्र जीवन पारसी संप्रदाय के लोगों के सामाजिक स्तर को सुधारने के लिए समर्पित कर दिया था । साथ-साथ महिलाओं को भी व्यवस्थित रुप से संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त हो, इस दिशा में काबराजी ने कई सराहनीय कार्य किये थे । "रस्त गोफ्तार" नामक अखबार एवं महिलाओं के लिए प्रकाशित की जानेवाली पत्रिका "स्त्री-बोध" के सम्पादक के रुप में कार्यरत काबरा जी ने इन प्रकाशनों के माध्यम से समाज में संगीत के प्रचार का एवं महिलाओं को संगीत के प्रति आकर्षित करने का अभूतपूर्व कार्य किया । यह संस्था शुरु में केवल पारसी संप्रदाय के पुरुषों की संगीत शिक्षा के लिए ही खोला गया था । उल्लेखनिय है कि भातखंडेजी को भी पारसी संप्रदाय के न होने के कारण, इस संस्था में संगीत सीखने हेतु प्रवेश नही दिया गया था ।

४० वर्षों के पश्चात् इस संस्था के सदस्य दादाभाई नौरोजी एवं संस्था के संरक्षक कईकोबाड़ अड़ेनवाला इत्यादि ने विद्यार्थीओं के प्रवेश प्रक्रिया के नीतिनियमों में कुछ बदलाव किए । सन् १९१२ के बाद इस संस्था में पारसी संप्रदाय पुरुषों के अतिरिक्त पारसी महिलाओं को भी विशेष सिफारिश और जाँच-पड़ताल के बाद प्रवेश दिया जाने लगा था ।

संस्था द्वारा कई निजी एवं सार्वजनिक संगीत समारोह एवं सांगीतिक गोष्ठीयों का आयोजन भी किया जाता था । संस्था के सदस्यों एवं विद्यार्थीयों को

संगीत सिखाने के लिए कई प्रख्यात एवं गुणी कलाकारों को नियुक्त किया गया था, जिसमें प्रमूख रुप से, ईमदाद खान (मुहम्मद खान के भतीजे; ग्वालियर), नजीर खान, छब्बू खान और खादिम हुसैन खान (मुरादाबाद और भींडीबजार) विलायतहुसैन खान (ग्वालियर), वजीर खान, इनायत खान, गोपालदास (जयपुर), हीरालाल (अमृतसर), राउजीबुवा बेलबागकर (पुणे), गणपति बुवा भीलवाड़ीकर (पुणे), सितार वादक अलीहुसैन खान (ग्वालियर) और मुररबा गोवेकर इत्यादि कलाकारों ने इस संस्था में संगीत शिक्षक के रुप में अपनी सेवाएँ दी थीं ।

उल्लेखनीय है कि वी. एन.भातखंडे जी ने भी अपने २४ वर्ष की उम्र में, सन् १८८४ में इस संस्था में शामिल होकर अपना मार्गदर्शन दिया था । ”[४२]

पूना गायन समाज

पूना गायन समाज की स्थापना सन् १८७४ में पुणे में की गई थी । एम.एम.कुटे, बी.टी सहस्त्रबुद्धे, बळवंतराय केतकर, नाटेकर, अण्णासाहेब, घारपुरे इत्यादि संस्थापको द्वारा शुरू कि गई संस्था का मुख्य उद्देश्य था “भारतीय संगीत एवं उसके वैज्ञानिक कौशल को समाज में प्रचलित करना और उसकी शिक्षा देना” । प्रारंभ के दिनों में इस संस्था ने घोषित किया था की “वे केवल स्वरलिपि का विरोध ही नही करती, किन्तु इस बात का गर्व भी करती है कि भारतीय संगीत इसका प्रतिरोध करता है ”।

स्वरलिपि संगीत के लिए अत्यंत आवश्यक है । अंग्रेजों के इस सोच का इस संस्था द्वारा हमेशा विरोध किया गया । समयांतर संगीत शिक्षा में स्वरलिपि का महत्व समझते हुए “पूना गायन समाज” ने भी संगीत के प्रबंधकों का संपादन करने का बीड़ा उठाया और सन् १८७८ में मराठी भाषा में “स्वर शास्त्र” नामक

पुस्तक का विमोचन किया । इस पुस्तक में लेखक ने दावा किया कि भारतीय संगीत प्राचीन काल से ही सर्वश्रेष्ठ और आधुनिक था । भारतीय संगीत ने स्वरलिपि का निर्माण बहुत पहले कर लिया था, जिसका विवरण हमें १३वीं शताब्दी के संस्कृत ग्रंथ "राग विबोध" में मिलता है । किन्तु इस ग्रंथ में स्वरलिपि के अस्तित्व के संदर्भ में "पूना गायन समाज" के लेखक के दावे का कोई ठोंस प्रमाण नहीं मिलता है । अंत में स्वरलिपि की आवश्यक्ता को समझते हुए "पूना गायन समाज" के शिक्षक पुरुषोत्तम गणेश घारपुरे ने सन् १८८३ में सितार वाद्य की शिक्षा पर मराठी भाषा में "सतारीचे पहिले पुस्तक" नामक पुस्तक लिखी । संस्था के अन्य शिक्षक बालकोबा नाटेकर और नारायण दास बाणहट्टी ने भी मराठी भाषा में प्रकाशित विभिन्न संगीत की पाठ्य पुस्तकों को संकलित करके "बाल संगीत बोध" नामक पुस्तक का विमोचन किया । सन् १८७६ से सन् १९२० के बीच "पूना गायन समाज" ने मुंबई, पुणे और मद्रास में लड़कों के लिए संगीत स्कूलों की स्थापना की तथा कर्णाटकी संगीत से संबधित प्रबंधों को भी प्रकाशित किया गया । इंग्लिश, तेलगु, मराठी भाषाओं में संगीत शिक्षा सबंधित कई पुस्तकें प्रकाशित की गई ।

"पूना गायन समाज" कि उपशाखा "मद्रास गायन समाज" में कर्णाटकी संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी । आगे चलकर इस संस्था का भास्कर बुवा बखले द्वारा स्थापित "बखले गायन समाज" या अन्य नाम "भारत गायन समाज" में विलिनीकरण हो गया ।"[४३]

मौलाबक्ष समकालिन उपर्युक्त तीनों संस्थाएँ, जिन्होंने समाज में संगीत को लोकप्रिय बनाया एवं सम्मान जनक स्थान अर्जित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । संगीत को शालाओं के माध्यम से सीखाना, संगीत साहित्य का प्रकाशन करना, सार्वजनिक सांगीतिक कार्यक्रम-गोष्ठीया आयोजित करना

इत्यादि महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक कार्य इन संस्थाओं के अन्तर्गत किये गए, जिसके योगदान को भूलाया नही जा सकता ।

१९वीं शताब्दि में मौलाबक्ष के समकक्ष सांगीतिक शाला / संस्थाओं की सूची

१. स्टुडन्टस् लिटरेरी ऍन्ड साइंटिफिक सोसायटी (SLSS) (स्थापना वर्ष १८४८)

२. गायन उत्तेजक मण्डली (स्थापना वर्ष १८७०)

३. पुणे गायन समाज (स्थापना वर्ष १८७४)

४. बोम्बे ब्रान्च ऑफ दि पुणा गायन समाज (स्थापना वर्ष १८८३)

५. मद्रास ब्रान्च ऑफ दि पुणा गायन गायन समाज (स्थापना वर्ष १८८३)

६. नटुस् म्युजिक स्कुल (स्थापना वर्ष १८८४)

७. बालकृष्ण बुवा इंछलकरंजीकर म्युजिक क्लासिस (स्थापना वर्ष १८८६)

८. मौलाबक्ष गायनशाला (स्थापना वर्ष १८८६)

९. रिपोन म्युजिक क्लब (स्थापना वर्ष १८८६)

१०. बालोबा श्रीपद संगीत विद्यालय (स्थापना वर्ष १८९५)

११. आर्यगायन विद्या रक्षक मण्डली (स्थापना वर्ष १८९५)

१२. अलबर्ट म्युजिक क्लब (स्थापना वर्ष १८९५) "[४४]

उपर्युक्त समाजसुधारकों के प्रयत्न के फलस्वरुप १९वीं शताब्दी में संगीत घरानेदार संगीतकारों के संकुचित विचारधारा और मर्यादित संख्या में संगीत विद्या देने वाले क्षेत्र से मुक्त हो रहा था । अब हर एक सामान्य व्यक्ति अपनी संगीत सीखने की इच्छा को आसानी से पूर्ण कर सकता था । परिवर्तनशीलता के इस

युग में संगीत अब घरानेदार और शालाकीय दोनों प्रकार के माध्यमों से सिखाया जाने लगा था ।

मौलाबक्ष का गायनशाला स्थापित करना और समाज में संगीत और उसकी शिक्षा के प्रति आदर-सम्मान प्राप्त करवाने कि भावना और संगीत के भविष्य को सुरक्षित रखने के उनके प्रयास सही अर्थों में पूजनीय थे । धर्मनिरपेक्ष मौलाबक्ष ने किसी भी प्रकार के ऊँच-नीच, धर्म-जात, शिष्य-पुत्र इत्यादि भेदभाव से परे निःस्वार्थ अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान की थी । मौलाबक्ष खुद गायनशाला में बिना किसी भेदभाव के अपने घर के पुत्रों, सदस्यों और आम संगीत के विद्यार्थीयों को एक-साथ संगीत शिक्षा देते थे । इस शताब्दी में जहाँ घरेलू-परिवार के सामान्य लोग संगीत का निषेध कर चुके थे; मौलाबक्ष उनको भी अपनी धर्मनिरपेक्षता, विनम्रता एवं विद्वता से संगीत के प्रति आकर्षित करने में सफल रहे थे ।

मौलाबक्ष का मानना था कि संगीत एक सुंदर कला है । अतः बच्चों को प्रारंभ से ही शालाकीय शिक्षा के साथ-साथ संगीत के संस्कार देना आवश्यक है । इसका मतलब यह भी नहीं है कि सभी संगीतज्ञ बन जाएँगें । किन्तु संगीत का प्रभाव मानव के चरित्र, हावभाव, बातचीत करने के तरीके इत्यादि के सुधार में सहायक की भूमिका अदा करती हैं ।

मौलाबक्ष के अधिकतर शिष्य मराठी ब्राहमण थे; विठ्ठल गणेश जोशी, क्रिष्णा भिमराव चित्रे, रघुनाथ कर्वे, विश्वनाथ काळे, मिनप्पा केलवाडे, बोरकर, जोशी, पंचाक्षरी, पाटणकर, लक्ष्मण, सदाशिव गणेश बापट, विदर्भ के कासलीकर बुवा तथा उन्ही के परंपरा में वर्तमान समय मे यवतमाल के डॉ.राजेन्द्र देशमुख इत्यादि कि "मौलाबक्ष घराने" के प्रमुख शिष्यों में गणना कि जाति हैं ।"[४५] २०वीं शताब्दी के प्रखर गायक "देवगंधर्व" भास्कर बुवा बखले की प्रारंभिक संगीत

शिक्षा मौलाबक्ष के पास ही हुई थी। एक संगीत महफिल में छोटे बालक भास्कर का कीर्तन सुनकर बड़ौदा नरेश काफी प्रभावित हुए थे। महाराजा ने छोटे भास्कर को संगीत का अधिक ज्ञान अर्जित करने के लिए मौलाबक्ष की गायन शाला में प्रवेश लेने की सलाह दी। करीब एक वर्ष तक उन्होंने मौलाबक्ष की गायन शाला में शिक्षा प्राप्त की। मौलाबक्ष द्वारा सिखाई गई राग नारायणी की बंन्दिश "नमामि महिषासुर मर्दिनी नमामि मामख पालिनी" एवं राग मुल्तानी की बंदिश " नैनन में आनबान कौनसी परी," को भास्कर बुवा कर्णाटकी शैली से बड़ी खुबसुरती से गाते थे। मौलाबक्ष भी भास्कर की संगीत सीखने की लगन और उनकी प्रगती से काफी प्रभावित हुए थे। अपनी संगीत यात्रा के दौरान विभिन्न शहरों में गुणीजनों के समक्ष मौलाबक्ष द्वारा सिखाए गए इन रागों की प्रस्तुति भास्कर बुवा अवश्य किया करते थे।"[४६] मौलाबक्ष गायन शाला के विद्यार्थी भास्कर बुवा बखले बाद में कलावंन्त कारखाने के फैज महम्मद खान के शिष्य बने। भास्कर बुवा बखले कि गणना उस समय के प्रसिद्ध गायकों में की जाति थी । उन्होंने सन् १९११ में पुना में "भारत गायन समाज " नामक संगीत विद्यालय कि स्थापना की थी ।

मौलाबक्ष की संगीत-शाला की सफलता से प्रेरित होकर उनके कई शिष्यों द्वारा भी संगीत-शाला खोले गये थे । मौलाबक्ष के शिष्य शिवराम सदाशिव मनोहर द्वारा सन् १९०२ में "दि बॉम्बे मौलाबक्ष म्युजिक स्कुल" की स्थापना की, जिसे "मुंबई गायन वादन शाला" के नाम से भी पहचाना जाता था। संगीत-शाला द्वारा "स्वर प्रस्तार" नामक संगीत की छोटी पत्रिका भी प्रकाशित की गई थी । सन् १९०४ मे, इस स्कूल में ८० विद्यार्थीयों का प्रवेश दर्ज किया गया था । मनोहर द्वारा १२० पन्नों का "संगीत शिक्षक" एवं "संगीत सौभद्र" नामक पुस्तकें भी प्रकाशित कि गई थी । "संगीत शिक्षक" नामक इस पुस्तक में मनोहर द्वारा गायन, नृत्य विषय की मूलभूत जानकारी देने के साथ-साथ तबला, सितार,

हार्मोनियम जैसे वाद्यों की वादन विधी इत्यादि के विषय पर भी प्रकाश डाला गया था ।"[४७]

मौलाबक्ष की गायन शाला के अन्य विद्यार्थी विठ्ठल गणेश जोशी और क्रिष्णराव भीमराव चित्रे ने सन् १९०२ को गीरगाँव, मुंबई में "मुंबई-मौलाबक्ष गायनशाला" की स्थापना की थी । बड़ौदा की मौलाबक्ष की शाला की तरह ही शाम को ६ से ७ के बीच यहाँ संगीत कि कक्षाएँ चलती थीं । सन् १९०८ और सन् १९१२ में मौलाबक्ष की स्वरलिपि में गायनों की बन्दिशों के रूप में कई पुस्तकें भी प्रकाशित कि गई थी । मौलाबक्ष की गायन शाला की भाँति यहाँ पर भी सितार, फिडेल, हार्मोनियम जैसे वाद्यों की शिक्षा इस स्कुल में दी जाती थी ।"[४८]

मौलाबक्ष की गायन शाला के अन्य एक विद्यार्थी गणेश गोपाल बर्वे ने १९०९ में बम्बई में एक संगीत-शाला शुरू की थी । गणेश गोपाल बर्वे प्रायोगिक शिक्षा के साथ साथ वैज्ञानिक सांगीतिक परीक्षण करने में भी काफी रुचि रखते थे । "संगीत का स्वास्थ्य पर परिणाम", "संगीत के रंग", "भारतीय और पाश्चात्य संगीत के नक्शे " इत्यादि विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर उन्होंने काफी कार्य किया था । वे मौलाबक्ष को अपना गुरु मानते थे । उन्होंने मौलाबक्ष की स्वरलिपि का स्वीकार किया था । मौलाबक्ष की स्वरलिपि में प्रयोग किये जानेवाले यह " " विशिष्ट चिहन कि जगह् "ॐ" चिहन लगाकर थोड़े बदलाव से गणेश गोपाल बर्वे ने अपनी स्वरलिपि का अविष्कार किया था ।

गणेश गोपाल बर्वे के पुत्र तथा स्कूल के शिक्षक मास्टर मनहर बर्वे (१९१०-७३) अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण युवाओं में काफी लोकप्रिय हो चुके थे । मास्टर मनहर बर्वे गायन के साथ-साथ करीब ३० वाद्यों को बजाने की कुशलता रखते थे । उनके कई शिष्य दक्षिण भारत तक फैल चुके थे । कालान्तर

में उन्होंने विद्यालय का नाम बदलकर अपने नाम से "मनहर संगीत विद्यालय" रख लिया ।"[४९]

मौलाबक्ष-बर्वे परम्परा के एक और शिष्य भास्कर गणेश भिडे ने सन् १९०७ में बर्वे के साथ संगीत विषय के शास्त्र पर अभ्यास शुरू किया था । सन् १९०९ में गणेश भिडे ने भी दादर मे अपने ही नाम से "गणेश शास्त्रीय संगीत शाला "की स्थापना की ।"[५०]

यहाँ पर हमने १९ वीं शताब्दी में पश्चिम भारत में संगीत शिक्षा के हेतु खोली गई संगीत शालाओं में से कुछ प्रमुख संकुलो का संक्षिप्त में अध्ययन किया । उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि १९ वीं शताब्दी में विविध महानुभावों द्वारा स्थापित स्कूलों को काफी लोकप्रियता मिली और इन्हीं स्कूलों के माध्यम से भारतीय संगीत को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ ।

मौलाबक्ष गायन शाला की एक और विशेष बात यह थी कि गायन शाला में भारतीय एवं पाश्चात्य गायन एवं विभिन्न वाद्यों की शिक्षा के लिए निष्णांत शिक्षकों की नियुक्ति की जाती थी । इस कार्य के लिए शिक्षकों को योग्य वेतन भी दिया जाता था । जहाँ देश के अन्य स्कूलों में केवल गायन विषय की शिक्षा को ही प्राधान्य दिया जाता था । अधिकतर स्कूलों की स्थापना विभिन्न समाज सुधारक एवं संगीत प्रेमी विद्वानों द्वारा की गई थी, जिन्हें संगीत का केवल शौकिया और सीमित ज्ञान था । ऐसी स्थिति में शिक्षक के पद पर किसी नामी कलाकार की नियुक्ति करनी पड़ती थी । वे कलाकार अपनी निजी साधना एवं प्रदर्शन पर विशेष ध्यान देते थे । अपने पट्ट शिष्यों के अलावा अन्य किसी संगीत जिज्ञासुओं को खुले दिल से विद्या नहीं सिखाते थे । जब कि, बड़ौदा नरेश के दरबार में नियुक्त सभी प्रखर एवं विद्वान गायक-वादकों को मौलाबक्ष की गायन शाला में, संगीत शिक्षक के रूप में भी अपना फर्ज अदा करना पड़ता था । गायन

शाला में मौलाबक्ष द्वारा आविष्कार की गई स्वरलिपि के माध्यम से सामूहिक शिक्षा पध्धतीनुसार संगीत शिक्षा देना आवश्यक समझा गया था। संगीत को एक परंपरा एवं सीमित दायरें से बाहर निकालकर लोकभोग्य बनाने के मौलाबक्ष के प्रयत्न के प्रति कुछ दरबारी कलाकारों द्वारा नाराजगी व्यक्त की गई थी।

उदाहरण स्वरूप आगरा घराने के नत्थन खान और अतरौली घराने के अल्लादिया खान जैसे विद्वान संगीतज्ञों को स्वरलिपि आधारित सामूहिक शिक्षा पद्धतीनुसार संगीत सिखाना अनुचित लगा और इसी कारणवश़ वे बड़ौदा की नौकरी छोड़कर चले गए।"[५१]

मौलाबक्ष की गायन शाला में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत शिक्षा के साथ-साथ शंकराभरणम्, खरहरप्रिया जैसे कर्णाटकी रागों को सिखाना दरबारी युवा कलाकार अब्दुल करीम खान को अजीब लगा था। मौलाबक्ष की स्वरलिपि में शिक्षा कार्य करना भी उन्होंने उचित नही समझा था।"[५२] भारतीय संगीत के आधुनिकीकरण करने के मौलाबक्ष के प्रयत्नों का अब्दुल करीम खान ने भी उपहास किया था।

किन्तु समयांतर मौलाबक्ष द्वारा स्थापित इन आधुनिक विचारों और कार्यो का स्वागत होने लगा। मौलाबक्ष के पद्चिहनों पर कुछ गुणीजनों ने अपनी स्वरलिपि बनाई और संगीत शालाओं की स्थापना की। उल्लेखनिय हैं कि शुरुआत में मौलाबक्ष की आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का विरोध करने वाले अब्दुल करीम खान ने भी अपनी संगीत शाला शुरू की थी। मौलाबक्ष की तरह ही अब्दुल करीम खान ने भी अपनी स्वरलिपि बनाकर उसमें छोटी-छोटी पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन किया था। मौलाबक्ष के समकालीन वरिष्ठ दरबारी कलाकार एवं घरानेदार शिक्षा प्रणाली के आग्रही ऐसे फैज महंमद खान ने भी मौलाबक्ष की भाँति "संक्षिप्त संगीत सुर्य प्रकाश तथा यशवंत संगीत

सुर्यप्रकाश " नामक स्वरलिपि का आविष्कार कर के पाठ्यपुस्त का निर्माण किया था ।"[५३]

१० जुलाई १८९६ में मौलाबक्ष के स्वर्गवास के पश्चात, सन् १९१४ तक उनके ज्येष्ठ पुत्र मुर्तजाखान पठान, कनिष्ठ पुत्र डॉ.अलाउद्दीन खान पठान एवं मौलाबक्ष के नाती इनायत खान ने इस संस्था के संचालन एवं संगीत शिक्षा के कार्य को बड़ी खूबी से निभाया ।"[५४] किन्तु कालान्तर में यह संस्था कमजोर पडती गई, जिसका मुख्य कारण मौलाबक्ष के पुत्रों और इनायत खान का विदेश की ओर प्रयाण करना माना गया है । दुसरा मुख्य कारण पं.विष्णु दिगंबर पलुस्कर, अब्दुल करीम खान, पं.विष्णुनारायण भातखंडे और भास्करबुवा बखले जैसे प्रखर और लोकप्रिय, कलाकारों, विद्वानों का संगीत संकुल खोले जाना भी हो सकता है ।

मौलाबक्ष के गायन-शाला खोलने के सफल परिश्रम के बाद उनसे प्रेरणा लेकर २०वीं शताब्दी में पश्चिम भारत में कई संगीत-संकाय खोले गए; जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से थे-

उस्ताद मौलाबक्ष के बाद २०वीं शताब्दी में शुरू किये गये संगीत-स्कूल / विद्यालयों की सूची

१. विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल – दिव्यांग विद्यार्थीयों के लिए (स्थापना वर्ष-१९०२)

२. मुंबई मौलाबक्ष गायन शाला (स्थापना वर्ष-१९०२)

३. पंडित पलुस्कर स्थापित गान्धर्व महाविद्यालय (स्थापना वर्ष-१९०८)

४. अनंत मनोहर जोशी द्वारा स्थापित गुरुसमर्थ विद्यालय (स्थापना वर्ष-१९०९)

५. जी.जी.बर्वे स्कूल ऑफ साइंटीफिक म्यूजिक (स्थापना वर्ष-१९०९)

६. मनहर संगीत विद्यालय (स्थापना वर्ष-१९०९)

७. शास्त्रीय गणेश संगीत शाला (स्थापना वर्ष-१९०९)

८. राजेश्वर गायन-वादन शाला (स्थापना वर्ष-१९०९)

९. भारत गायन समाज (स्थापना वर्ष-१९११)

१०. एस.एन.डी.टी वुमन्स युनिवर्सिटी, बम्बई ब्रांच (स्थापना वर्ष- १९१६)

११. वी. एन.भातखंडे शारदा संगीत मण्डल (स्थापना वर्ष-१९१७)

१२. अब्दुल करीम खान की आर्य संगीत विद्यालय, बम्बई ब्रांच (स्थापना वर्ष-१९१८)

१३. ताराबाई नूतन संगीत विद्यालय (स्थापना वर्ष- १९१८)

१४. विष्णुदिगंबर की श्री रामनाम आधार संगीत मण्डल (स्थापना वर्ष-१९१८)

१५. कपिलेश्वरी की सरस्वती संगीत विद्यालय (स्थापना वर्ष-१९२०)

१६. बी.आर देवधर की स्कूल ऑफ इन्डियन म्युझीक (स्थापना वर्ष- १९२५)

१७. महाराष्ट्र संगीत विद्यालय (स्थापना वर्ष- अज्ञात)

१८. मुंबई महिला संगीत परिषद (स्थापना वर्ष-१९२९)

१९. अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल (स्थापना वर्ष -१९३१)

२०. ट्रीनीटी क्लब (स्थापना वर्ष- अज्ञात)

२१. बोम्बे म्यूजिक सर्कल (स्थापना वर्ष- १९३०)

२२. श्री गुजरात संगीत महामंडल (स्थापना वर्ष- १९३५)

२३. हिन्दुस्तानी सम्प्रदाय गायक-वादक सभा (स्थापना वर्ष- १९३६)

२४. भारतीय संगीत समिति (स्थापना वर्ष- १९३७)

२५. व्यास संगीत विद्यालय,दादर (स्थापना वर्ष- १९३७)"[५५]

कर्णाटकी संगीत एवं ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था पर आधारित उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत शिक्षा देनेवाली यह बड़ौदा की गायनशाला अपने आप में अनोखे प्रकार की संस्था थी। एक रुढ़िवादी कला को मौलाबक्ष ने आधुनिक रूप प्रदान करके अमर कर दिया। ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इतिहास गवाह है कि भारतीय संगीत में स्वरलिपि आधारित सामूहिक संगीत शिक्षा व्यवस्था की नींव रखने वाले उस्ताद मौलाबक्ष प्रथम कलाकार थे। मौलाबक्ष से प्रेरणा लेकर कई विद्वानों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। पं.वि.दि.पलुस्कर, पं.वि.ना.भातखंडे, भास्कर बुवा बखले इत्यादि इसके श्रेष्ठतम उदाहरण हो सकते है। मौलाबक्ष के इन्हीं ऐतिहासिक कार्यो के चलते वरिष्ठ संगीत विद्वान शरदचन्द्र गोखले ने मौलाबक्ष को एक "सांगीतिक अवतार" की उपमा देते हुए लिखा है कि गायनशाला के स्थापक एवं स्वरलिपि के अविष्कारक प्रो.मौलाबक्ष ने हिन्दुस्तान में सामूहिक संगीत शिक्षा देने की दिशा में जो कार्य किये हैं; जिसके चलते वर्तमान समय में भी हमारा संगीत और उसकी शिक्षा व्यवस्था काफी मजबूत स्थिति में है। मौलाबक्ष के संगीत शिक्षा अर्थी कार्यो कि सराहना करते हुए गोखले ने उन्हें "नींव का पत्थर" की उपमा से भी सम्मानित किया हैं।

उल्लेखनिय है कि देश के इतिहास में यह सर्वप्रथम ऐसी गायन शाला हैं, जो १ फरवरी १८८६ में अपनी स्थापना से लेकर लगातार बिना किसी रुकावट के १३२ सालों से बड़ौदा में निरंतर अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान कर रही है। इस दौरान मौलाबक्ष द्वारा स्थापित यह गायनशाला अविरत प्रगति के पथ पर गतिमान होती रही और उसके नामों में कई परिवर्तन होते रहे।

सन् १९३६ से म्यूजिक कॉलेज के नाम से पहचाने जाने वाली इस गायनशाला को महाराजा के देहांत के पश्चात् महाराजा के सहयोगियों द्वारा सन् १९४९ में स्थापित महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के साथ संलग्न करके डिप्लोमा के साथ-साथ स्नातक कक्षा के अभ्यास क्रम भी इस संस्था में शुरू किये गए । ३० अप्रैल १९४९, से इस संस्था को "भारतीय संगीत महाविद्यालय" (दि कॉलेज ऑफ इंडियन म्यूज़िक) के नाम से पहचाने जाने लगा। शुरू में इस महाविद्यालय में गायन तथा वादन दो प्रमुख विभाग थे। जून, १९५० से नृत्य और नाट्य विषय के विभाग भी शुरू किये गए। बादमें फाइन आर्टस् संकाय के साथ संयुक्त रूप से जुड़े इस संस्था को सन् १९५३ से "दि कॉलेज ऑफ इंडियन म्यूजिक, डान्स, एन्ड ड्रामेटिक्स" के नाम से पहचाने जाने लगा। उत्तरोत्तर प्रगती करने वाली यह सांगीतिक संस्था सन् १९८४ से फाइन आर्ट्स संकाय से अलग होकर एक स्वतंत्र संकाय के रूप में स्थापित हुई, और तब से इसे "फॅकल्टी ऑफ परफोर्मिग आर्टस्" के नाम से पहचाना जाने लगा। अब इस संस्था में गायन, वादन, नृत्य और नाट्य विषयों में डिप्लोमा, स्नातक, अनुस्नातक और पी.एच.डी स्तर की पढ़ाई भी की जाती है। १३३ साल पूर्व शुरु की गई यह गायनशाला "फॅकल्टी ऑफ परफॉर्मिंग आर्ट्स" का प्रतिष्ठित खिताब हांसिल करके गौरव के साथ सुरसागर की लहरों से ताल मिलाते हुए शान से खड़ी है।"[५६] देश विदेश से कई विद्यार्थी यहाँ संगीत सीखने आते हैं। इस फॅकल्टी की एक और विशेषता है कि यह कॉलेज दिन में दो समय अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान करता है, सुबह ८ से दोपहर के १ बजे तक स्नातक, अनुस्नातक और पी.एच.डी के छात्रों को शिक्षा प्रदान करती है। उल्लेखनिय है की यु.जी.सी के नियमानुसार सुबह में ही अपना शैक्षणिक कार्यभार समाप्त हो जाने पर भी यहा के शिक्षक शाम को ६ से ८ में मौलाबक्ष कि परंपरा को जारी रखते हुए पूरी निष्ठा से ५वीं कक्षा से उपर के छात्रों को संगीत शिक्षा देते है।

मौलाबक्ष के समाज में संगीत को लोकप्रिय बनाने के ध्येय एवं उनके सपने को आज भी यह म्यूजिक कॉलेज पूरी निष्ठा से निभा रहा है ।

अब हम विद्यालयीन संगीत शिक्षा से संगीत जगत को क्या लाभ हुए, उसे संक्षेप में निम्न प्रकार से समझने का प्रयास किया गया है ।

१. समाज में संगीत और कलाकारों के प्रति आदर बढ़ा ।

२. स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ सभी खुलकर संगीत सीखने लगे । घरानेदार संगीत की क्लिष्ट, अनुशासित एवं सीमित संख्या में शिक्षा देने की व्यवस्था से मुक्ति मिली । संगीत शिक्षा आसान हुई । संगीत के श्रोता एवं कलाकारों की संख्या में वृद्धि होने लगी ।

३. २०वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भारतीय संगीत एवं कलाकारों को राजा-महाराजाओं, रईसों-जागीरदारों पर आश्रित रहना पड़ता था । परन्तु वर्तमान समय में सरकारी एवं निजी स्कूल एवं विद्यालयों में संगीत विषय की शिक्षा के प्रचलन से संगीत के कलाकारों को शिक्षक के पद के रुप में अधिक संख्या में आजिविका प्राप्त होने लगी ।

४. विद्यालयीन संगीत शिक्षा में डिप्लोमा, डिग्री, पी.एच.डी, डि.लीट जैसी सर्वोच्च उपाधियाँ प्राप्त होने लगी, और अन्य विधाओं कि तरह संगीत को भी शिक्षा व्यवस्था में स्वतंत्र एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ ।

५. वर्तमान समय में संगीत शिक्षक न केवल क्रियात्मक एवं शास्त्रीय ज्ञान किन्तु शोध और प्रशासनिक कार्यो में भी प्रवीण हो रहा है ।

६. संगीत विद्यालयों के माध्यम से राज्य, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगीत गोष्ठीयों का आयोजन होने लगा । संगीत विषय के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा, निष्कर्ष, आदान-प्रदान और आविष्कार होने लगे ।

७. उत्तरी, दक्षिणी एवं पाश्चात्य संगीत का आदान-प्रदान होने लगा । फ्युजन, वृंद वादन, समुह गायन, म्यूजिक थेरापी जैसी आधुनिक शैलियों को प्रोत्साहन मिला ।

८. स्वरलिपि के प्रयोग से छात्रों को संगीत सीखने समझने में आसानी हुई । गुरु की अनुपस्थिति में भी राग की बंदिशे, तानें इत्यादि के अभ्यास में सहायता प्राप्त हुई ।

९. घरानेदार एवं पारंपारिक बंदिशो के प्रलेखन के माध्यम से वर्तमान एवं भविष्य के लिए संगीत को सुरक्षित रख्खा जाने लगा ।

१०. विद्यार्थीओं को विभिन्न घरानों के गुरु व उनकी शैलीया सिखने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ ।

२.८ संगीत अभ्यासलक्षी ग्रंथ-साहित्य के निर्माण में उस्ताद मौलाबक्ष कि भूमिका

सन् १८८६ में मौलाबक्ष स्थापित गायनशाला की अद्‌भुत सफलता के बाद अब मौलाबक्ष का संपूर्ण ध्यान संगीत अभ्यासलक्षी ग्रंथों का निर्माण करने की दिशा में केन्द्रित हो चुका था । पाठ्य् पुस्तक आधारित संगीत शिक्षा देने का यह आधुनिक विचार कई वर्षो से मौलाबक्ष के मन में घर कर चुका था । अपनी इस अधूरी महेच्छा को पूर्ण करने के लिए मौलाबक्ष देश भर में घुमते रहे किन्तु उनके इस सोच को कही पर भी समर्थन प्राप्त नहीं हुआ । संगीत अभ्यासलक्षी ग्रंथों के

निर्माण द्वारा मौलाबक्ष भारतीय संगीत की शिक्षा व्यवस्था को अधिक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक बनाना चाहते थे । इस समय तक उपलब्ध घरानेदार संगीत पद्धति में शिष्य को पूरी तरह से गुरु पर अवलंबित रहाना पड़ता था । गुरु द्वारा सिखाएँ गए रागों और उसकी बन्दीशों का बार-बार रटण करके उसे कंठस्थ करना पड़ता था । पाठय् पुस्तक आधारित संगीत शिक्षा व्यवस्था न होने से शिष्यों के लिए स्वतंत्र अभ्यास करने में कई कठीनाईयों का सामना करना पड़ता था । सामूहिक शिक्षा पद्धतिनुसार शिक्षा देनेंवाली इस गायनशाला में घरानेदार शिक्षा पद्धति के निति नियमों अनुसार शिक्षा देना असंभव था । भारतीय संगीत में रुचि रखने वाले आम लोग, जिनको भारतीय राग संगीत का विशेष ज्ञान नहीं है, उन्हें पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से संगीत शिक्षा देना मौलाबक्ष ने उचित समझा । भारतीय संगीत शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक एवं पारदर्शी बनाने के इस विचारों को बड़ौदा में महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय का समर्थन प्राप्त हुआ और इस तरह पाठ्य पुस्तक आधारित संगीत शिक्षा देने का मौलाबक्ष का यह सपना भी बड़ौदा में साकार हुआ ।

स्वयं महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ सन् १८८८ में अपनी पहली युरोप यात्रा के दौरान पश्चिमी संगीत की विकसित शिक्षा प्रणाली से बेहद् प्रभावित हुए थे । इसी प्रकार की आधुनिक शिक्षा व्यवस्था भारतीय संगीत में भी होनी चाहिए, ऐसा विचार महाराजा के मन में उपस्थित हुआ । बड़ौदा आगमन होते ही महाराजा ने मौलाबक्ष को गायन शाला में शिक्षा हेतु ग्रंथ साहित्य का निर्माण करने की आज्ञा दी और राज्य की ओर से आवश्यक आर्थिक सहाय भी प्रदान की गई ।

उल्लेखनिय हे कि संगीत अभ्यास लक्षी ग्रंथ साहित्य के लिए आवश्यक स्वरलिपि का आविष्कार मौलाबक्ष पहले ही कर चुके थे । मौलाबक्ष एक प्रखर संगीतज्ञ होने के साथ- साथ एक उत्तम रचनाकार रुप में भी ख्याति अर्जित कर

चुकें थे । प्राचीन सांगीतिक ग्रंथों का गहन अध्ययन कर चुके मौलाबक्ष को भारतीय संगीत के इतिहास एवं उसके शास्त्र का ज्ञान भी कुछ कम न था । विविध भाषाओं एवं विविध संगीत प्रकारों का ज्ञान रखने वाले मौलाबक्ष के लिए अपनी स्वरलिपि में भिन्न-भिन्न राग रागिनियों को विभिन्न ताल-लय में निबद्ध करना कोई कठीण कार्य न था । किन्तु चतुर मौलाबक्ष यह जानते थे कि यह कार्य करने का अवसर उन्हें बड़ौदा में मिला है । इस कार्य को सफल बनाने के लिए बड़ौदा में रहने वाले प्रजा के पसंद-नापसंद को ध्यान में रखते हुए ग्रंथों का निर्माण करना अति आवश्यक है । यहाँ के लोगों की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए उनकी बोली समझी जाने वाली मातृभाषाओं में पाठ्य पुस्तकों का निर्माण करना मौलाबक्ष द्वारा उचित समझा गया । भिन्न-भिन्न रागों को स्वरलिपि बद्ध करने के लिए आवश्यक बंदिशों या काव्यों की रचना एवं उसका चयन करना एक चुनौती भरा कार्य था । खुद को मिले इस सुवर्ण अवसर को मौलाबक्ष सफलता पूर्वक पूर्ण करना चाहते थे । किंतु इस कार्य को बड़ी सावधानी पूर्वक करना अति आवश्यक था । मौलाबक्ष के मतानुसार मुगल काल में मूल भारतीय संगीत में कई परिवर्तन हुए । बदलते हुए संगीत प्रकारों के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण के भाव में भी काफी परिवर्तन हुआ । मुगल काल में मूल भारतीय संगीत का आध्यात्मिकता के भाव से शृंगारिकता की ओर प्रयाण शुरू हो चुका था । ईश्वर को समर्पित इस संगीत कला को अब बादशाहों के दरबार में उनकी स्तुति और मनोरंजन के लिए पेश किया जाने लगा था । बढ़ती हुई शृंगारिकता के परिणाम स्वरूप सभ्य समाज के लोग भारतीय संगीत से दूर ही रहते थे ।

मौलाबक्ष का मानना था कि जो कलाकार भाव-पूर्ण गायन करता है, उसका प्रभाव श्रोताओं पर अधिक होता है । कई गुणी गायकों के गीत या गायन से श्रोताजन को आनंद की अनुभूति नहीं होती, इसका मुख्य कारण यही है कि वे अपने भाव में लीन होकर उसकी प्रस्तुति नहीं करते, जब कि दूसरी

ओर बड़ौदा शहर में रहने वाली प्रजा संगीत के राग-ताल के नियमों से भली-भाँति परिचित न होते हुए भी ईश्वर की प्रेम भावनाओं में ओत-प्रोत होकर भजन, गरबा, रास, प्रभातीया इत्यादि लोक संगीत के प्रकारों को अत्यंत मधुरता के साथ गाया करते हैं, जिसका प्रभाव स्वंय गायक और उसके श्रवण करने वाले के चित्त पर आवश्य ही होता हैं । इसीलीए मौलाबक्ष ने गायनशाला मे अभ्यासलक्षी ग्रंथ साहित्य कि रचना करने हेतु बड़ौदा में प्रचलित आध्यात्मिक एवं संस्कार सिंचन करने वाले काव्य रचनाओं को अग्रिमता देने का निश्चय किया ।

ग्रंथ निर्माण के संशोधन कार्य के दौरान मौलाबक्ष की पहचान संत श्री मन्नृसिंहाचार्यजी से हुई । मन्नृसिंहाचार्यजी के संगीत विषय संबधित ज्ञान से प्रभावित होकर बड़ौदा नरेश के कारभारी भगुभाई मुन्शी मौलाबक्ष को उनके पास ले आये थे । मन्नृसिंहाचार्यजी संगीत के बहुत शौकीन थे ।

सन् १८५४ सूरत में जन्मे संत श्री मन्नृसिंहाचार्य जी ने सन् १८८२ में बड़ौदा में नृसिंहाश्रम की स्थापना की । आचार्य श्री ने गृहस्थाश्रम में रहकर भी आध्यात्मिक उन्नति के पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया था । अपने आध्यात्मिक तपश्चर्या से आचार्य को योग, संगीत, साहित्य इत्यादि विषयों का भी अच्छा ज्ञान था । एक तटस्थ तत्व विचारक एवं समाज सुधार परक उपदेश देने वाले आचार्य के सूरत, बड़ौदा और काठीयावाड़ में कई अनुयायी थे । गुजरात में उन्हें काफी आदर सम्मान के भाव से देखा सुना जाता था ।

मौलाबक्ष जी तो प्रथम समागम से ही आपके प्रति पीर पयगंबर जैसा सम्मान बताने लगे । मौलाबक्ष श्री मन्नृसिंहाचार्यजी के संगीत विषय के ज्ञान से काफी प्रभावित हुए थे । बापजी के साथ प्रथम मुलाकात से ही मौलाबक्ष को ऐसा प्रबल आकर्षण उत्पन्न हुआ कि बड़ौदा स्थित निज़ामपुरा और भुतड़ीझापा आश्रम

में बार-बार दर्शन के लिए जाना उनका नित्य क्रम हो चुका था । बापजी के ह्रदय में भी हिन्दू , मुसलमान, पारसी, जैन जैसे कोई भेद नहीं थे । जो कोई भी सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने कि मनशा से आता उसे बापजी सत्य का मार्ग दिखलाते थे । बापजी की इसी खूबी से प्रभावित मौलाबक्ष जैसे चुस्त मुसलमान भी आपका समागम अति उच्च भाव से करते थे । मौलाबक्ष जी की पत्नी भी बापजी के प्रति भक्ति का भाव रखती थीं ।

नृसिंहाचार्य जी के सान्निध्य का मौलाबक्ष को काफी लाभ हुआ । नृसिंहाचार्यजी ने निज़ामपुरामें थे तबसे आध्यात्मिक ज्ञान के बोधक पद्य लिखने शुरु किये थे । मौलाबक्ष और बापजी के बीच संगीत, धर्म, आध्यात्म जैसें कई विषयों पर चर्चा-विचारणा होती थी । बापजी के प्रमुख शिष्य वर्ग में मौलाबक्ष की गणना कि जाती थी । बापजी द्वारा रचित अनेक कीर्तनों और भजनों को मौलाबक्ष बडी भक्ती भाव से गाते थे । बापजी के समागम से नये-नये रागों में कीर्तनों की रचना करने की अभिलाषा मौलाबक्ष के मन में जागृत हुई थी । मौलाबक्ष की इच्छा का मान रखते हुए बापजी विविध राग रागिनियों में कीर्तनों की रचना करने लगे और उसे मौलाबक्ष के सुरीले, एवं बुलंद आवाज में भक्तों को श्रवण करवाते थे ।

मौलाबक्ष को जब लींबडीमें महाराजा यशवंतसिहजी के दरबार में जाने का निमंत्रण मिला । मौलाबक्ष ने महाराजाके सामने एक प्रसंग पर राग जंगला में श्रीमन्नृसिंहाचार्यजीका एक किर्तन गाकर सुनाया । "कोई हैर शुद्‌ध जौहरी, परखे मेरी हिरदाकेरी" । यह किर्तन सुनते ही महाराजा के धार्मिक संस्कार तुरंत सचेत हो गये । उन्होंने मौलाबक्ष से पूछा "यह किसने बनाया है?" मौलाबक्षने कहा । बड़ौदे में बडे महान् संत पुरूष है । नरसिंहाचार्यजी । बडे तेजस्वी, मानो सब शास्त्र पुरान जाननेवाला कोई ओलिया है ।" इन वचनोंके सुनते ही उनके ह्रदयमें

आपके दर्शनकी तीव्र आतुरता प्रकट हुई । और महाराजा ने त्वरीत नरसिंहाचार्यजी को आमंत्रित किया ।

मौलाबक्ष संगीत अभ्यासलक्षी ग्रंथो के लिए, जिन आध्यात्मिक एवं निति-बोधक काव्यों की खोज कर रहें थें उनकी वह अभिलाषा अब पूरी हो चूंकी थी । मौलाबक्ष को लगा की बापजी द्वारा रचित उच्च संस्कारी काव्यों के माध्यम से रचित सांगीतिक बंदिशो को सिखाने से बालकों के अंतःकरण में शुभ संस्कार स्थापित होंगे । इस कार्य में बापजी ने मौलाबक्ष को अपुर्व सहायता प्रदान की । मौलाबक्षने उनसे अपनी इच्छानुसार कुछ रागों के पद्य भी लिखवाये थे ।

उल्लेखनीय है कि मौलाबक्ष द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि मौलाबक्ष नें श्री मन्नृसिंहाचार्यजी के काव्यों को ही आधार बनाकर राग शंकराभरणम्, कल्याण, खमाज, काफि, जोगीया, बिहाग, केदार, जंगला, भैरवी इत्यादि रागों में बंदिशों की रचना की हैं । आरंभिक "सारीगम" इत्यादि अलंकार के काव्य भी श्री मन्नृसिंहाचार्यजी के द्वारा ही रचे गए हैं ।"[५७]

संगीत अभ्यासलक्षी प्रकाशित इन पुस्तकों को लोगों का अच्छा प्रतिभाव प्राप्त हुआ और पाठ्य पुस्तकों द्वारा संगीत देने का मौलाबक्ष का यह प्रयोग भी बहुत सफल हुआ । गायनशाला में प्रकाशित अन्य ग्रंथों में गुजरात के मध्यकालीन लोकप्रिय ऐसे भक्तकवि संत नरसिंह महेता, कवि प्रेमानंद, कबीर, नानक, दादू, सुदंर, दास, मीराबाई, शंकराचार्य आदि तथा मौलाबक्ष के समकालीन कवि हरि हर्षद ध्रुव, भोलानाथ दिवेटिया जैसे महानुभवों के काव्यों, आख्यानों, पदों, भजनों इत्यादि को भी आधार बनाकर मौलाबक्ष ने संगीत अभ्यालक्षी पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन किया ।"[५८]

इस तरह काफी अनुसंधान कार्य के बाद मौलाबक्ष यहाँ की प्रजा की पसंद-नापसंद को भली-भाँति समझने में कामयाब हुए । इन कवियों की प्रार्थनाओं एवं काव्यों को समाज में लोग आदर सम्मान से पढ़ते एवं गाते थे । संगीत के साथ आध्यात्म, भक्ति को जोड़ने से जन मानस पर इसका गहरा असर हुआ । लोग संगीत सीखने के प्रति आकर्षित होने लगे । गायन शाला की प्रसिद्धि दिनों दिन बढ़ती गई और छात्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी । गुजराती, मराठी, हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित ये पुस्तकें पश्चिम भारत में काफी प्रचलित हुई एवं संगीत सीखने के लिए इन पुस्तकों को आधार माना जाने लगा ।

गायन के साथ-साथ सितार, हार्मोनियम, फिड़ेल, तबला जैसे वाद्यों की शिक्षा के लिए भी गायन शाला में पुस्तकें प्रकाशित की गई । उन दिनों पुस्तकों के लेखन, छपाई इत्यादि का कार्य करना काफी दुष्कर था । ऐसी परिस्थिति में भी मौलाबक्ष ने अपने जीवन के आखिरी आठ वर्षों में पूरी लगन एवं परिश्रम से अभ्यास लक्षी १४ सांगीतिक पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन किया । मौलाबक्ष के परिवारजनों और कुछ शिष्यों ने भी उनके पद् चिहनों पर चलते हुए संगीत पुस्तकों का प्रकाशन किया । मौलाबक्ष द्वारा स्थापित गायन शाला, मौलाबक्ष की स्वरलिपि और संगीत अभ्यासलक्षी ग्रंथों की चर्चा पूरे देश में होने लगी । मौलाबक्ष का विरोध करने वाले अब खुद मौलाबक्ष के समर्थक बन चुके थे और उन्हीं के पद चिहनों पर चलकर भारतीय संगीत शिक्षा को आधुनिक एवं वैज्ञानिक बनाने की दिशा में कार्य करने लगे थे । मौलाबक्ष के इस संकल्पना के फलस्वरूप वर्तमान समय में ऐसी कई सांगीतिक संस्थाएँ, कॉलेज, फेकल्टी या विभाग मौलाबक्ष के पदचिहनों पर शिक्षण कार्य कर रहे हैं । मौलाबक्ष के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आज सामान्य जन मानस को संगीत सीखना, समझना सरल हो चुका है । इसीलिए संस्थागत सामूहिक शिक्षण प्रणाली और उसमें

पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग शुरू करने वाले मौलाबक्ष को इस शिक्षा प्रथा की नींव रखने का श्रेय अवश्य ही दिया जाता है ।

गायन शाला के पाठ्यक्रम में प्रयुक्त होने वाले ग्रंथों की सूची

१. संगीतानुभव प्रथम दर्शन- प्रकाशन वर्ष- सन् १८८८, ग्रंथकार– मौलाबक्ष ।

- इस पुस्तक में संगीत कला के शास्त्र की प्राथमिक जानकारी प्रदान की गई है तथा मौलाबक्ष की स्वरलिपि में पाठ्यक्रम के विविध रागों की बंन्दिशों को समाविष्ट किया गया है ।

२. सितार शिक्षक - प्रकाशन वर्ष- सन् १८८८, ग्रंथकार - मौलाबक्ष ।

- इस पुस्तक में सितार के विविध अंगों एवं उसकी वादन विधि को सचित्र समझाया गया है । अलग-अलग रागों और तालों में सितार के गतों को स्वरलिपि बद्ध किया गया है ।

३. ताल-पद्धति - प्रकाशन वर्ष- सन् १८८८, ग्रंथकार - उस्मान खान ।

- मौलाबक्ष के शिष्य उस्मान खान द्वारा मौलाबक्ष के मार्गदर्शन में लिखी गई इस तालवाद्य आधारित पुस्तक में तबला वादन की विधि को चित्रों के माध्यम से समझाया गया हैं । विभिन्न अलंकारों की परिभाषा दी गई है । कुछ प्रमुख तालों के ठेके, बोल और टुकड़े बजाने की तकनीक वादन विधि को चित्रों के माध्यम से समझाया गया है ।

४. संगीतानुसार छन्दोमन्जरी -प्रकाशन वर्ष- सन् १८९२, ग्रंथकार -मौलाबक्ष ।

- उपर्युक्त पुस्तक में अलग-अलग रागों और तालों में कुल ५८ छंद-गण व मात्रा इत्यादि की जानकारी दी गई है ।

५. नरसिंह महेतानु मामेरू - प्रकाशन वर्ष- सन् १८९३, ग्रंथकार - मौलाबक्ष ।

- गुजरात के मध्यकालीन प्रसिद्ध संत कवि प्रेमानंद द्वारा लिखित इस पुस्तक में नरसिंह महेता के चरित्र की कविताओं को मौलाबक्ष द्वारा विभिन्न रागों और तालों में स्वरलिपि बद्द किया गया है ।

६. बाला संगीत माला (मराठी) - प्रकाशन वर्ष- सन् १९९१, ग्रंथकार - मौलाबक्ष ।

७. बाला संगीत माला (गुजराती) - प्रकाशन वर्ष- सन् १९९१, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

- उपर्युक्त दोनों पुस्तकों को विशेष रुप से कन्या शालाओं में संगीत सिखाने हेतु नीति-बोधक व भक्ति-भाव आधारित छंद, चीज़ें, पद, गरबे इत्यादि को विभिन्न रागों-तालों में निबद्ध किया गया है ।

८. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों का पुस्तक भाग-१- प्रकाशन वर्ष- सन् १८९९, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

९. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों का पुस्तक भाग-२- प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार-मौलाबक्ष ।

१०. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों का पुस्तक भाग-३- प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

११. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों का पुस्तक भाग-४- प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

१२. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों का पुस्तक भाग-५- प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

१३. गायन शाला में चलाए जाने वाले गायन की चीजों की पुस्तक भाग-६- प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार - मौलाबक्ष ।

- उपर्युक्त पुस्तक क्रमांक ८ से १३ तक की कमिक छ पुस्तकों में गायन शाला में सीखने वाले लड़कों के लिए बनाए गए पाँच वर्ष के पाठयक्रमनुसार विविध रागों-तालों में बंदिशों की रचना कि गई हैं ।

१४. भगवंत गरबावली - प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

- नवरात्र के उत्सव में स्त्री और बालाओं द्वारा ईश्वर की स्तुति के लिए गाए जानेवाले गरबों को रागों एवं तालों में निबद्ध किया गया है ।

१५. गुजराती वांचनमालाकी कविताओं का नोटेशनबुक - प्रकाशन वर्ष- सन् १८९४, ग्रंथकार- मौलाबक्ष ।

- गुजराती कन्या शाला में कक्षा १ से ७ में सिखाई जानेवाली कविताओं को राग-ताल में निबद्ध किया गया है ।

१६. इनायत हार्मोनियम शिक्षक - प्रकाशन वर्ष- सन् १९०३, ग्रंथकार - इनायत खान ।

- इस पुस्तक में हार्मोनियम वाद्य की प्राथमिक जानकारी देते हुए हार्मोनियम बजाने कि तकनिक को सचित्र समझाया गया हैं ।

१७. इनायत फिडल शिक्षक - प्रकाशन वर्ष- सन् १९०३, ग्रंथकार - इनायत खान ।

- इस पुस्तक में फिडेल वाद्य की वादन विधि, उसके उंगली और गज़ का हिसाब को सचित्र समझाया गया है । नोटेशन के साथ रागों की बंदिशें भी दी गई हैं ।

१८. इनायत गीत रत्नावली - प्रकाशन वर्ष- सन् १९०३, ग्रंथकार - इनायत खान ।

- कुल ७५ लोकप्रिय गायनों को उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की विविध गायन शैलियाँ जैसे कि ठुमरी, होरी, पद, गजल एवं अंग्रेजी भाषा में काव्यों को निबद्ध किया गया है ।

१९. गायनाचार्यमाला प्रथम पुस्तक मूलाधार- प्रकाशन वर्ष- सन् १९०७, ग्रंथकार-मिनाप्पा व्यंकप्पा केल्वाडे ।

मौलाबक्ष के इस शिष्य ने अपनी पुस्तक में गायन शास्त्र, शरीर शास्त्र एवं स्वर साहित्य आधारित शिक्षा प्रणाली इत्यादि को विस्तृत रूप से समझाया गया है ।

२०. सितार शिक्षक - १९१४, ग्रंथकार- सदाशिव गणेश बापट ।

- मौलाबक्ष की गायन शाला के शिक्षक सदाशिव गणेश बापट ने मौलाबक्ष की स्वरलिपि में सितार वाद्य एवं उसकी वादन विधि की जानकारी इस पुस्तक में दी है । इस पुस्तक में कई रागों की गतें लिखी गई है ।

२.९ संगीत शिक्षा में भारतीय महिलाओं की स्थिति तथा गुजरात में नारी संगीत-शिक्षा के उत्थान में उस्ताद मौलाबक्ष का योगदान

भारतीय संगीत एक अतिप्राचीन एवं समृद्ध कला है । स्वयं ईश्वर द्वारा निर्मित इस संगीत कला की हमारे पुराणों में विस्तृत चर्चा की गई हैं । भारतीय संस्कृति में संगीत को अति पवित्र कला मानते हुए विभिन्न देव-देवियों से उसका संबंध बताया गया है । माना जाता है कि भारतीय संगीत में प्रयोग किये जाने वाले राग-रागिनियाँ तथा विविध संगीत वाद्यों की उत्पत्ति भी स्वयं ईश्वर से ही हुई हैं । ब्रहमा, विष्णु, शिव, नटराज, नारद, सरस्वती, श्रीकृष्ण आदि देवीं-देवताओं को संगीत से संलग्न बताया गया है । स्वर्ग लोक में रहनेवाले अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, आदि को भी गायन, वादन, नृत्य में प्रवीण बताया गया हैं । ऐसी मान्यता हैं की, स्वयं ईश्वर द्वारा उपभोग कि जाने वाली इस पवित्र संगीत कला का आस्वाद पृथ्वी लोंक में रहनेवाले स्त्री-पूरुषों को समान रुप से प्राप्त हों इसीलिए ईश्वर के आर्शिवाद रुप ही यह कला भू-लोक पर अवतरित हुई ।

भारत के परिपेक्ष में देखा जाए, तो संगीत की परम्परा वैदिक काल से चली आ रही है । वैदिक काल में सामगान की प्रथा थी । सामगान में ईश्वर की भक्ति के लिए संगीत की आराधना देवालयों में अत्यंत पवित्र भाव सें की जाती थी । उस समय में संगीत को ईश्वर आराधना का माध्यम माना जाता था और उसे अत्यंत आदर-भाव की दृष्टि से देखा जाता था । स्त्री-पुरूष दोनों ही उसमें सम्मिलित होते थे । इस प्रकार हमारी संस्कृति में अति प्राचीन काल से ही स्त्री-पुरूष दोनों के समान रुप से संगीत से संलग्न होने के प्रमाण मिलते हैं । भारत के प्राचीन साहित्य में महिलाओं की संगीत-शिक्षा के संबंध में भी काफी जानकारी प्राप्त होती है । वैदिक युग की महिलाओं में संगीत कला कौशल प्रचुर मात्रा में

उपलब्ध होता है । महाकाव्य काल में भी राज स्त्रियों के राज-कलाकार होने के प्रमाण मिलते है ।

मध्ययुग में ही सम्भवतः संगीत विद्या सभ्य समाज की स्त्रियों के लिए निषिद्ध समझी जाने लगी । इसका कारण संभवयता बाहरी शासकों का भारतीय स्त्रिया और विशेषकर कला निपुण स्त्रियों के प्रति विशेष आस्थावान न होना रह गया था । मध्यकाल में संगीत मात्र राज-दरबारों की शोभा बन कर रह गया था । उत्तर मध्यकाल में संगीत विद्या विशिष्ट व्यवसायी स्त्रियों के लिए ही सीमीत हो गई थी । उच्चभू समाज में स्त्रियां तो क्या पुरूषों का भी संगीत सीखना दुरूह था । पहले जहा संगीत में व्यापक प्रमाण में भक्तिरस निरूपित हुआ करता था, उसके स्थान पर शृंगारिकता अत्याधिक बढ़ने लगी । भक्तिरस-प्रधान प्रबंध प्रकार ध्रुपद के स्थान पर शृंगाररस-प्रधान प्रबंध खयाल, ठुमरी की लोकप्रियता बढ़ने लगी ।

धीरे-धीरे संगीत कला में शृंगारिकता के साथ अश्लीलता ने भी स्थान जमाया । शहेनशाहों के दरबारों में या कोठें इत्यादि स्थानों पर जो संगीत परोसा जाता था, उसका स्तर अत्यंत गिरा हुआ था । मनोरंजन हेतु वेश्याएं भी संगीत का प्रयोग किया करती थी । अतः संगीत को पवित्र मानने का कोई वातावरण ही नहीं रहा गया । समाज के सभ्य, संस्कारी वर्ग ने उसे अयोग्य, अनुचित मानकर उसका बहिष्कार किया करते थे । उस समय समाज में आम धारणा थी कि, यदि लड़का गाना सीखेगा तो सम्भव है कि, बुरे मार्ग पर चला जाय, अतः कोई भी व्यक्ति अपनी संतानों को संगीत नहीं सखने देता था ।

१९ वी शताब्दी में भी यह स्थिती थी कि सभ्य घराने की लड़कियों के बारे में संगीत सीखने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी । इसके पीछे और भी एक महत्वपूर्ण बात थी यह थी की, उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत की बंदिशों के

साहित्य में मानवीय व्यवहार के विभिन्न भावों का प्रकटन होता है । उसमें भी श्रृंगार प्रधान साहित्य की अधिकता दिखाई देती है । श्रृंगार की ये कल्पनाएँ हमारी हीन अभिरूचि को दर्शाती है । अंग्रेजों का अनुकरण करने वाले हमारे भद्र समाज ने ही हमारे संगीत और संगीतज्ञों को बहिष्कृत किया, उनका अपमान किया और फिर जैसे ही हमारे राष्ट्र प्रेमी महानुभावों ने अपनी सभ्यता, कलाएँ, संस्कृति तथा साहित्य के प्रति, हमारी परम्पराओं के प्रति स्वाभिमान जगाया, वैसे ही लोगों के मन में फिर से संगीत के प्रति अभिमान जाग उठा । हमारे संगीत के प्रति अभिमान रखना राष्ट्र भावना है यह समझ कर इस भावना को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस होने लगी ।

उस्ताद मौलाबक्ष जी जब बड़ौदा में थे तब उपर्युक्त परिस्थितियों पर वे बड़ी गम्भीरता से विचार करते थे । प्रत्येक स्थान पर उन्हें इसी प्रकार का अनुभव होने लगा । समाज की यह स्थिती किस प्रकार बदली जा सकती है इस बात का वे विचार करने लगे । इस स्थिती के लिए उत्तरदायी केवल गायक-वादक वर्ग है या समाज का भी कुछ दोष है यह देखना आवश्यक था । संगीतज्ञों को अनेक रागों का अभ्यास व बंदिशें कण्ठस्थ करनी पड़ती हैं, आवाज तैयार करने के लिए प्रतिदिन कम से कम चार-छः घंटे मेहनत करनी पड़ती है । इस विद्या को पाने के लिए कठोरतम परिश्रम करने पड़ते हैं, फिर क्या कारण है कि इतने परिश्रम से साध्य की गई विद्या को समाज में सम्मान नहीं मिलता । यह बात भी सच थी कि तवायफों की संगत के कारण गायकों-वादकों को अनेक प्रकार की बुरी आदतें लग जाती थी, परन्तु इसमें गायकों-वादकों का इतना दोष नहीं था । समाज से उपेक्षित होने पर उनके पास उन औरतों को सिखाने के अलावा जीविका का अन्य कोई मार्ग ही नहीं था, अतःमौलाबक्ष ने सर्वप्रथम संगीत कि सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने का संकल्प किया ।

संगीत एक अनोखी शक्ति है अभिजात एवं शुद्ध देवी संगीत में जानवर भी तल्लीन हो जाता है; तो मनुष्य का उसमें खो जाना स्वाभाविक ही है । मनोरंजन करना संगीत का मुख्य आशय नहीं है । संगीत के द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास हो सकता है । प्राचीन ऋषिमुनियों तो संगीत को मोक्ष का साधन है; ऐसी कल्पना की है । जिस तरह शिक्षण का ध्येय "सा विद्या या विमुक्तये" है, उसी तरह संगीत भी "वीणावादनतत्वज्ञ श्रुति जातिविशारद": । तालज्ञश्वाप्रयासन मोक्षमात्र निगच्छति "अर्थात् उत्तम संगीत की साधना से मोक्ष प्राप्ति निश्चित है । प्राचिन काल में संगीत का महत्तम प्रयोग धार्मिक एवं शुभ कार्यों में होता था । उससे संगीत की पवित्रता कायम रहती थी; जिसमें समाज के स्त्री-पुरूष दोनों ही सक्रिय रूप से भाग लेते थे ।

मौलाबक्ष को लगा कि गुजरात के इस बड़ौदा में व्यवसाय परक और उस्तादी संगीत से परहेज करने वाले समाज में यदि इस संगीत को पुनःजीवन प्रदान करके ; आदर-सम्मान प्राप्त करवाना है तो पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी संगीत का ज्ञान देना होगा । मौलाबक्ष जी ने महसूस किया की स्त्रियों के कंठ में ईश्वर ने कुदरती मधुरता प्रदान कि है । इसलिए स्त्री, पुरुष से भी बेहतर और स्वाभाविक रूप से गायन कर सकती है; स्त्रियों का स्वभावगत लालित्य, नजाकत, निश्चित रूप से कला के लिए पोषक है । स्त्रियाँ अधिकांश समय घर में व्यतीत करती हैं । अतः स्त्री को यदि संगीत विद्या ज्ञात होगी, तो घर का समग्र वातावरण संगीतमय हो जाएगा । और इन्हीं सांगीतिक संस्कारो का लाभ बालकों और वयस्कों को भी मिल सकता है । यदि स्त्री घर में ही उत्तम स्तर का संगीत प्रस्तुत कर सके, तो पुरूष वर्ग को काम से आकर थकान दूर करने, मनोरंजन के लिए कोठे इत्यादि स्थानों पर जाने कि आवश्यकता भी न रहे । जिस तरह भारत में प्राचीन काल में संगीत को स्त्रीओं का आभूषण माना जाता था । पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियों के गाने-बजाने को आदर के साथ देखा जाता

है । और बालपन से ही लडकियों को संगीत की तालीम दी जाती है, वहाँ भारतीय समाज आज भी स्त्रियों की संगीत शिक्षा के प्रति जागृत नही हो पाया था ।"[५९] इन बातों से व्यथित मौलाबक्ष ने महिलाओं को भी संगीत के प्रति जागरुक करना महत्वपूर्ण समझा और इस दिशा में कार्य शुरु किया ।

मौलाबक्ष यह भलिभाँति जानते थे कि बड़ौदा में कन्याओं को संगीत के प्रति आकर्षित करना एक दुष्कर कार्य है । कन्याओं को संगीत सिखाने की शुरुआत काफी संभलके करने कि जरूरत थी । गायनशाला में लड़कों के साथ क्या कन्याएँ शिक्षा ले संकेगी ? क्या एक मुस्लीम उस्ताद के पास लोग अपनी लड़कीयों को संगीत सीखने भेजेंगे ? इस प्रकार के कई प्रश्न मौलाबक्ष की चिन्ता का कारण बने थे ।

मौलाबक्ष का मानना था की वास्तव में स्त्री का मधुर कंठ संगीत के लिए काफी उपयुक्त है । यदि उसमें राग ,सुर तालमात्रादि का ज्ञान मिश्रित हो जाए, तो सोने में सुगंध । इस प्रकार के सुधार करने के लिए सब को एक मत होना चाहिए, और इस तरह से स्त्रियों को संगीत का ज्ञान देना, गायन विद्या का जिर्णोद्धार करने में पहली और क्रमिक सीढ़ी साबित हो सकती है ।"[६०]

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नारी शिक्षा के हिमायती ऐसे महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय के शासन में काफी सुधार हुआ । कन्याओं की शिक्षा में महाराजा की रुचि इतनी अधिक थी की उन्होंने मौलाबक्ष को कन्याओं के लिए भी संगीत शिक्षा की कक्षाएँ खोलने की अनुमती दी । स्वयं महाराजा के दरबार में भी पुरुषो के भाँती महिला कलाकारों को भी समान दृष्टि से मान सम्मान प्रदान किया जाता था । उनके दरबार में लक्ष्मीबाई, इदनजान, हंसाबाई जैसी गायीका एवं छम्मोंजान, अच्छनजान, गौराबाई, कांतामती, गौराजी, सरस्वती, रत्नमाला और पुर्व की जबेनबाई, सक्वारबाई, इच्छाबाई, जैसी

नृत्यांगनाए आदि के नाम आज भी आदर के साथ स्मरण किये जाते है । महाराजा के प्रोत्साहन एवं सहयोग स्वरूप मौलाबक्ष ने महिलाओं को संगीत शिक्षा प्रदान करने में अहम भूमिका अदा की थी ।

गुजरात के परिपेक्ष्य में देखा जाए, तो यह माना जाता है कि गुजराती प्रजा यानी संगीत का अरसिक मानव । उसे पैसा कमाने की कला ही साध्य है । किन्तु वो कला का उपासक नहीं होता । महाराष्ट्र , कर्णाटक , बंगाल इत्यादि प्रांतों में जो संगीत की जागृति हम देख रहे है, वैसी गुजरात मे नहीं है; यह एक कटुसत्य है ।"[६१] स्वभाव से गुजराती अर्थलक्षी और वाणिज्य वृत्ति के होते हैं । बालक से लेकर वयस्क तक के लोगों की दृष्टि व्यापारी होती है । फीर भी उनके जीवन में संगीत को स्थान नही; ऐसा बिल्कुल नहीं है । लोक संगीत नृत्य-नाटक इत्यादि सांगीतिक धरोहरों को गुजरात के लोगों ने भली-भाँति अपनी रुचि के अनुसार संरक्षित रखा है ।

उस्तादी संगीत या शास्त्रीय संगीत के प्रति अधिकांश गुजराती लोग अधिक जानकारी रखने वाली नही होते तथा उसके प्रति वे उदासीन रहते हैं । फिर भी, गुजरात की सांगीतिक पृष्ठभूमि को हम संक्षेप में देखें तो यह पता चलता है कि गुजरात में कई प्रख्यात संत कवि हो गये, जिन्होंने सगींत के माध्यम से आध्यात्म का प्रचार-प्रसार किया । जैन संप्रदाय, स्वामीनारायण संप्रदाय एवं वैष्णवों में भी संगीत विषय का कुछ माहौल जरूर रहा । स्वामीनारायण संप्रदाय के संतकवि मुक्तानंद, ब्रम्हानंद इत्यादि को हम कैसे भूल सकते हैं, जिन्होंने विभिन्न रागों में आध्यात्मिक पदों की रचना की थी । वैष्णवों की हवेली परंपरा से चले आ रहे संगीत को भी हमें याद रखना होगा । पिछले करीब १५० वर्षों से यह परम्परा गुजरात में आज भी जीवित है । कवि नरसिंह महेता का केदार तथा मीरा का मल्हार अभी भी गाया जाता है । तानारीरी नाम

की दो नागर बहनें जो वड़नगर में रहती थीं; जिन्होने मियाँ तानसेन के राग दीपक के गाने से होनेवाली असह्य जलन की पीड़ा को राग मल्हार गाकर शांत किया था। चांपानेर के बैजु-बावरा को कौन भूल सकता है, जिन्होंने अपने दिव्य संगीत से हुमायूँ को प्रसन्न किया और उसके बख्शिश के रूप में लडाई बंद करने का आग्रह किया। जिसका विवरण "मिराते सिकंदरी" में मिलता है।

गुजरात में रास या गरबा गीतनृत्य विशेष प्रचलित है। रास और गरबा के राग, परम्परा से चले आ रहे हैं। नरसिंह महेता का "आजनी घड़ी रळियामणी" यह पद और "मेहुलो गाणे ने माधव नाचे, रूमझुम वागे पाय घुघरंडी", मीरा का "हार कोई माधव ल्यो", दयाराम का "श्याम रंगे समीपे न जावुं" यह सब अद्भूत रास-गरबा की लोक-संस्कृति एवं कला गुजरात में अभी तक जीवित है। रास-गरबा संस्कृति ने गुजराती लोगों के जीवन में प्रवेश किया है, गाँव-गाँव संदेश पहुँचाने में गुजरात के इन लोकगीतों ने काफी महत्वपूर्ण कार्य किया है। हिन्दुस्तान के दूसरे प्रांतों की तरह गुजरात की यह प्रमुख विशेषता है कि गरबा-रास में गाये जाने वाले गीतों में केवल हल्के राग नहीं होते, बल्कि उसमें मल्हार से लेकर झींझोटी, खमाज, सारंग, मांड, देश, सोरठ इत्यादि राग आ जाते है। रास-गरबा में ताने-पल्टे होते हुए भी उसमें भावयुक्त मींड और गमक का प्रयोग अच्छी तरह से होता है। इस के उपरांत दादरा, दीपचंदी, कहरवा जैसे तालों में हिंच भी इसमें सुनने को मिलती है।"[६२]

अतः काफि अनुसंधान के पश्चात मौलाबक्ष ने यह निष्कर्ष निकाला की गुजराती स्त्रीओं में लोक-गायनों का विशेष प्रचार है। नवरात्रि, लग्नादि, शुभ प्रसंग पर स्त्रियाँ अपनी गायन कुशलता को सार्वजनिक तौर पर प्रगट करती है, और उनके मधुर कंठ को सुनने के लिए लोग काफी संख्या में आते है।

मौलाबक्ष ने विचार किया कि क्यों न गुजरात की इसी लोकप्रिय, परंपरागत एवं समृद्ध लोक-संगीत की कला को आधार बनाकर कन्याओं को संगीत सिखने के प्रति आकर्षित किया जाए । और इस प्रकार काफी अनुसंधान के बाद सन् १९९१ में लड़कियों को संगीत शिक्षा देने हेतु बड़ौदा की गुजराती कन्याशाला नं.१ और मराठी कन्याशाला नं. १ में संगीत शिक्षा की कक्षाएँ शुरू कि गई । जिसका संचालन मौलाबक्ष खुद किया करते थे । दोनों स्कूलों में कुल मिलाकर ५२ छात्राओं ने संगीत विषय में प्रवेश लिया था ।"[६३]

मौलाबक्ष ने गुजराती और मराठी कन्याशाला में संगीत को एक विषय के रूप में समाविष्ट करवाया तब संगीत को एक स्वैच्छिक विषय के रुप में रख्खा गया था, क्योंकि मौलाबक्ष का मानना था की कला कि शिक्षा जबरदस्ती से नही दी जा सकती ।"[६४] कन्याओं को संगीत कि शिक्षा उनके स्कूल में हि पढ़ाई के साथ-साथ दि जाति थी, उन्हें गायन-शाला में आने की आवश्यकता नहीं रहती थी । कक्षाओं को सुचारु रुप से चलाने के लिए मौलाबक्ष को एक सहयोगी भी दिया गया था । संगीत कक्षा का समय शाम को साढ़े चार से साढ़े पाँच एक घण्टे तक रखा गया था । यहॉ एक हारमोनियम, एक तबला तथा चार सितार वाद्य शिक्षण बाबत रखे गये थे । संगीत शिक्षण प्रारंभ मे निशुल्क दि जाती थी किन्तु ये कक्षायें शुरु करते समय जो नियम बनायें उसमें लिखा था कि आवश्यक हुआ तो आने वाले समय में बहुत ही कम पर कुछ शुल्क लिया जा सकता है । यहॉ एक हारमोनियम शिक्षक, एक तबला शिक्षक तथा एक सितार शिक्षक नियुक्त किये गये थे । इनकी कमशः तन्ख्वाह प्रतिमाह ५०/-, २५/-, २०/-, थी । कुछ वर्षो के पश्चात महिलाओं को दिलरुबा वाद्य का भी प्रशिक्षण दिया जाने लगा ।

मौलाबक्ष ने सोचा कि कन्याशाला में सीखाई जानेवाले संगीत शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में होना चाहिए और तभी कन्याएँ इसमें अधिक रूचि लेंगी। क्योंकि आर्य संगीत का महत्तम भाग उस्तादी गीतों से भरपूर है, जिसके गीत उर्दू और हिन्दी में होने से गुजराती और मराठी कन्याएँ उसे कैसे समझ सकेंगी। शृंगांररस प्रधान रागदारी बन्दिशों कि जगह गुजरात में ही लोकप्रिय एवं घर-घर में प्रचलित धार्मिक संत कवि प्रेमानंद, नरसिंह मेहता, कबीर, सुन्दर, नानक, शंकराचार्य, मन्नुसिंहाचार्य इत्यादि भक्तों की आध्यात्मिक रचनाओं तथा पदों को शास्त्रीय राग-ताल-छन्दों में रुपान्तरित करके मौलाबक्ष द्वारा सन् १८९१ में "बालासंगीत माला" (धार्मिक बंन्दिशे गुजराती भाषा में गुजराती कन्याशाला के लिए) और "बालासंगीत माला" (धार्मिक बंन्दिशे मराठी भाषा में मराठी कन्याशाला के लिए) नामक पुस्तकें प्रकाशित की गई। ये पुस्तके मौलाबक्ष के खुद आविष्कार की गई स्वरलिपि में निबद्ध थे। इस तरह इन पुस्तकों के माध्यम से कन्याएँ जिस गरबा, रास, पद, भजन इत्यादि का प्रयोग अपने घर एवं स्कूलो में पढ़ाई के दौरान करती है उसे उचित ताल-सुर के हिसाब से सीखें, ऐसा प्रयत्न कीया गया।

मौलाबक्ष बड़ौदा में थे, तब उन्होंने यह महसूस किया था कि उस समय गुजरात में लोक संगीत के रूप में दोहा, गरबा, पद, भजन आदि घर-घर में प्रचलित थे। इसे अधिकतर स्त्रियाँ काम काज के साथ गाया करती थी; पर उसमें राग, ताल, छन्द आदि सांगीतिक तत्वों की शुद्धता का अभाव था। मौलाबक्ष को लगा कि संगीत के अभ्यासक्रम में छन्दशास्त्र कि विशेष आवश्यकता है, इस शास्त्र की ओर यदि दुर्लक्ष हुआ तो भाषा का भाव बदल जाता है, और उसका विपरीत असर होता है। छन्दशास्त्र मुख्यतः ताल के साथ सम्बन्ध रखता है। इसीलिए भजनों को ताल में निबद्ध करने से पहले उसके छन्द, मात्रा, वृत्त और यमक कि तरफ विशेष ध्यान देना पडता है। जिससे

उसके अन्दर के भाव की हानि न हो सके । इस हेतु सन् १८९२ में मौलाबक्ष ने "संगीतानुसार छंदोमंजरी" नामक एक और संगीत पुस्तक की रचना की । इस पुस्तक में कन्याशालाओं में पढ़ाई जाने वाली पद्य कविताई रचनाओं को विभिन्न रागों, छंदों, तालों इत्यादि शास्त्रीय नियमों के साथ विधिवत गायन शिक्षा प्रदान की जाती थी । बड़ौदा में निवासी विविध भाषी कन्याओं को भी इस ग्रंथ का लाभ प्राप्त हो सके । इस उद्देश्य से संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और मराठी इन चार भाषाओं में भी इस पुस्तक को प्रकाशित किया गया था ।"[६५]

कन्या शालाओं में शुरू किये गये संगीत के वर्ग और उससे संबधित प्रकाशित पुस्तकों के प्रति कन्याओं की रूचि में दिनों दिन वृद्धि होने लगी । इस सफलता से प्रेरित होकर मौलाबक्ष ने सन् १८९३ में "नरसिंह मेहता नुं मामेरू" नामक संगीत पुस्तक की रचना की । गुजराती कन्या शाला की उच्च कक्षाओं में गुजरात के प्रसिद्ध कवि प्रेमानंद कृत "नरसिंह मेहता नुं मामेरू" नामक पुस्तक की आध्यात्मिक पद्य रचनाओं को विशेषतः सिखाया जाता था । प्रेमानंद स्वयं एक कवि होने के साथ-साथ संगीत शास्त्र का भी ज्ञान रखते थे । उनकी पद्य रचनाओं में केदारो, धनाश्री, गौड़ी, मल्हार, सावेरी इत्यादि सुंदर रागों का प्रयोग किया जाता था । इस पुस्तक को गुजरात में घर-घर में भावपूर्ण होकर गाया जाता था । किन्तु इस पुस्तक में स्वर लिपि का अभाव होने से राग ताल जैसे संगीत के नियमों से लोग अपरिचित थे । संगीत का विशेष ज्ञान न होने के कारण इस पुस्तक में रचित उच्च रचनाओं को लोग अपने इच्छानुसार जैसे तैसे गाते थे, जिससे इन अध्यात्मिक रचनाओं में समाविष्ट भावों को बहुत हानि पहुँचती थी । आध्यात्मिक आनंद एवं रंजकता के लिए इन रचनाओं को संगीत शास्त्र के अनुसार गाना आवश्यक था । इस बात से विदित मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में, कवि प्रेमानंद द्वारा बताये गये रागों में ही पद्य रचनाओं को संगीत बद्ध किया ।"[६६]

गुजरात की स्त्रियों में गरबा गायन के प्रति काफी आकर्षण दृष्टिगोचर होता है । इस बात को ध्यान में रखकर मौलाबक्ष ने कवि भगवंत राय दाजीभाई मुनशीजी के गरबों को स्वरलिपिबद्ध करके "भगवंत गरबावली" के नाम से लोकसंगीत आधारित पुस्तक भी प्रकाशित की । पहली कक्षा से सातवीं कक्षा के कन्याओं को पढ़ाई जाने वाली कविताओं की भी राग-ताल में रचना करके मोलाबक्ष ने "गुजराती वांचनमालाकी कविताओं का नोटेशनबुक" नामक पुस्तक प्रकाशित कीया । इस तरह स्त्रियों की रुचियों कों ध्यान में रखते हुए सांगीतिक पुस्तकों की रचना करके मौलाबक्ष ने बड़ौदा में स्त्रियों को भी संगीत सीखने-समझने के प्रति आकर्षित किया ।

जिस समाज में स्त्रियों के लिए संगीत सीखना दुर्लभ हो गया हो, उसी समाज की सांगीतिक संस्कृति-धार्मिकता एवं भाषा का आधार लेकर, विनम्रता के साथ कन्याओं की संगीत-शिक्षा के लिए अद्भुत प्रयास करना, इस तरह का गुजरात में शायद यह प्रथम प्रयत्न मौलाबक्ष द्वारा किया गया था । मौलाबक्ष ने स्त्री संगीत शिक्षा की दिशा में काफी ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण कार्य किया ।

उल्लेखनीय हैं कि सन् १८९५ में अपनी की मृत्यु के ठीक एक वर्ष पहलें मौलाबक्ष ने और एक नवीन संगीत परंपरा को बड़ौदा में विकसित कीया वह थी "समूह-गायन" । महिला छात्राओं को समूह-गायन की शिक्षा विशेष रूप से दि जाती थी । भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्यों के सम्मिश्रण के साथ कीस तरह समूह-गायन किया जाए, यह छात्राओं को बखूबी सिखाया जाता था । महिलाओं का यह गायक वृंद काफी प्रचलित हुआ था । राज्य और राज्य के बहार उद्घाटन प्रसंग, सार्वजनिक प्रदर्शन, समारोह इत्यादि में इस महिला गायक वृंद को प्रस्तुति के लिए विशेष कर आमंत्रित किया जाता था ।

उल्लेखनीय है कि सन् १९१६, बड़ौदा में पं.भातखंडे जी के अध्यक्षता में आयोजित "प्रथम अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन" के उदघाटन के अवसर पर गायनशाला कि छात्राओं द्वारा समूह-गायन की प्रस्तुति कि गई थी ।"[६७]

कन्याओं के लिए खोले गए संगीत की कक्षाओं में शुरू के दिनों में संख्या कम थी; किन्तु अब कन्याओं को उनका परिवार बिना किसी संकोच के संगीत शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करता था । सन् १८९२ में मौलाबक्ष ने कन्याओं के लिए तांजोर नृत्य के वर्ग भी शुरु किये थे । सन् १९०८ के वार्षिक रिपोर्ट अनुसार , उस समय ४७३ की बडी संख्या में कन्याए संगीत शिक्षा ले रही थी, उसमें से ३२० ने परीक्षा दी थी और २९४ छात्राएँ इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने में सफल रही थी । ड़भोई, पाटण, नवसारी, अमरेली और महेसाणा में भी कन्याओं के लिए संगीत की विशेष कक्षाएँ खोली गई थी ।"[६८]

२.१० उस्ताद मौलाबक्ष : एक बहुमुखी प्रतिभा

संगीत की दुनिया में मौलाबक्ष को देश कि प्रथम संगीत शाला के संस्थापक एवं भारतीय संगीत के लिए आवश्यक स्वरलिपि के आविष्कारक के रुप में पहचाना जाता है । किन्तु भारतीय संगीत के कई क्षेत्रों में मौलाबक्ष द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किए गये हैं । मौलाबक्ष एक बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न मूर्धन्य कलाकार थे । निःस्वार्थ भाव से विद्यादान के लिए तत्पर आदर्श गुरु, विशिष्ट सृजनशील प्रतिभा से पूर्ण संगीत रचनाकार, उत्तम संगीतज्ञ, प्रशासनिक कार्यो में पारंगत ऐसे कलावन्त कारखाने के प्रमुख, गायनशाला के प्रिन्सिपाल, उत्तम शिक्षक, व्यवस्थापक, संगीत शिक्षा लक्षी प्रकाशक तथा एक उच्चकोटी के विचारशील वाग्गेयकार, आदि के रूप में मौलाबक्ष ने अभूतपूर्व ख्याति अर्जित की है ।

मौलाबक्ष का जन्म एक धनवान जमीनदार के घर में हुआ था वे चाहते तो एक जमीनदार के रूप में अपना संपूर्ण जीवन ऐशो-आराम से व्यतीत कर सकते थे। किन्तु एक अतृप्त कलाकार की आत्मा उन्हें चैन से बैठ ने नहीं दे रही थी। दूसरें शब्दों में कहा जाए तो संगीत और मौलाबक्ष एक सिक्के के दो पहलू थे, जो एक दुसरे के बिना अधूरे थे। संगीत के इसी आकर्षण ने मौलाबक्ष को न केवल भारत में वरन् पूरे सांगीतिक विश्व में आदर-सम्मान से देखा जाता है। घरानेदार संगीतज्ञ न होते हुए भी उन्होंने कठोर परिश्रम एवं अथक अभ्यास के बलबूते पर भारतीय संगीत के मुलाधार उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत और दक्षिण हिन्दुस्तानी संगीत, दोनों पद्धति यों में प्रवीणता हांसिल की थी। एक अध्ययन के अनुसार यह विदित होता है कि मौलाबक्ष भारत के प्रथम ऐसे मुस्लिम कलाकार थे, जिन्होंने अपनी महेनत, विनम्रता और धीरज से दक्षिणी संगीत के शास्त्र एवं प्रायोगिक कला में भी निपुणता हांसिल की थी। मौलाबक्ष देश के प्रथम कलाकार थे, जिन्होंने उत्तर भारतीय संगीत को कर्णाटकी संगीत के कई रागों-तालों से परिचीत करवाया। मौलाबक्ष की गायन शाला में विद्यार्थीयों की शिक्षा हेतु शंकराभरणम्, खरहरप्रिया, मुखारी, आभोगी, आभेरी, रामग्री, किरवाणी, नट नारायणी, केदार गौड़ जैसे कर्णाटकी रागों को अभ्यास क्रम में शामिल करके दोनों संगीत पद्धतियों की बीच की दूरि को कम करने का सराहनिय प्रयत्न किया था।

बहुमुखी विद्या के उस्ताद मौलाबक्ष उच्चकोटि के ध्रुवपदीये के रूप में प्रचलित थे। वे गायन के साथ-साथ कई वाद्यों को बजाने की भी कुशलता रखते थे। उत्तरी संगीत पद्धति के वाद्य रुद्रवीणा, सितार, जलतरंग और दक्षिण संगीत पद्धति की सरस्वती वीणा, इत्यादि वाद्यों को बजाने में वे निपुण थे।

उस समय के दो श्रेष्ठ गुरु, एक बड़ौदा के घसीट खान और दूसरे दक्षिण के सुब्रम्हण्यम् अय्यर से शिक्षा लेकर दोनों संगीत पद्धतियों में मौलाबक्ष अपनी श्रेष्ठता साबित की थी । दोनों गुरुओं का ज्ञान असीम, अपार था । किसी भी अवसर पर मौलाबक्ष इन दोनों गुरुओं द्वारा सिखायें गए ज्ञान का प्रदर्शन करने से चुकते नहीं थे । कभी-कभी वे कर्णाटकी और उत्तरी संगीत का संयुक्त रूप से प्रयोग करके संगीत के रसिक श्रोताओं को हैरत में डाल दिया करते थे ।

मौलाबक्ष एक बीनकार के रूप में भी काफी प्रसिद्ध थे । बीन बजाते हुए तल्लीन हो जानेवाले मौलाबक्ष की प्रत्यक्ष मूर्ति का वर्णन किया जाए तो बीन के दो बड़े तुंबे में से एक उनके कंधे पर और दुसरा उनकी गोद में, बीच में मौलाबक्ष का सिर, जैसे वह तीसरा तुंबा ही हो । बीन की नाद में से मींड़, गमक को बजाते हुए वे तल्लीन हो जाते थे । राग के आलाप से गंभीर, मर्दानी और मधुर नाद उत्पन्न करके राग की छवि खड़ी करने में वे सिद्ध हस्त विद्वान थे । कठोर श्रमसाध्य के दृढ़ निश्चयी मौलाबक्ष कि ६० साल की उम्र तक गायन और वीणावादन का ६ से ९ घंटे प्रतिदिन रियाज़ करना आदत बन चूकि थी। व्यस्त दिनचर्या के बावजूद एक सच्चे मूसलमान के भाँति दिन में पांच बार नमाज़ पढ़ना मौलाबक्ष कभी नही भूलते थे ।

उस समय अन्य घरानेदार कलाकारों की तरह शास्त्रीय संगीत की परंपरागत शैली में बँधे रहना मौलाबक्ष के स्वभाव में नही था । कुछ न कुछ नया सीखने की उनकी इच्छा ने उनको संगीत की विविध शैलियों में निपुण बनाया था । केवल शास्त्रीय संगीत की चौखट में न बँधकर मौलाबक्ष ने शास्त्रीय-उपशास्त्रीय-पाश्चात्य संगीत में भी अपनी प्रविणता हांसिल की थी । उल्लेखनीय है की मौलाबक्ष ने अपने शुरुआति दौर में लावणी गायक के रूप में सांगीतिक

जीवन का प्रारंभ कीया था ।"[६९] मराठी नाट्य संगीत-गझल-अंग्रेजी काव्यों के रचनाकार के रूप में भी मौलाबक्ष ने सराहनीय कार्य किया था ।

संगीत की विभिन्न शैलियाँ एवं उसके शास्त्र के साथ–साथ मौलाबक्ष का भाषाकिय ज्ञान भी उच्च कोटि का था । भारत के विविध राज्यों में राज्याश्रय के दौरान मौलाबक्ष ने वहाँ की संस्कृति, संगीत एवं उसका शास्त्र अर्जित करने के लिए वहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं को भी सीख लिया था । संस्कृत, तेलुगू, गुजराती, मराठी, उर्दू, एवं अंग्रेजी भाषा को भलिभाति बोलना-लिखना वे जानते थे । मौलाबक्ष की इसी बहुमुखी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महाराजा ने सन् १९९१ में मौलाबक्ष को १७ वीं शताब्दी में पंडित अहोबल कृत "संगीत परिजात" और सन् १९९३ में १३ शताब्दीं में पंडित शारंगदेव के ग्रंथ "संगीत रत्नाकर" जैसे भारतीय सांगीतिक ग्रंथों को अनुवाद करने के लिए विनती की । इन दोनों प्राचिन सांगीतिक ग्रंथों के अतिरिक्त और अन्य आठ संगीतलक्षी संस्कृत लेखों के संपादन एवं अनुवाद का कार्य को भी मौलाबक्षने सन् १९९३ में पुर्णं किया । संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद करके मौलाबक्ष ने संस्कृत न समझने वाले संगीत रसिकों, विद्यार्थीयों के लिए इन ग्रंथो को जानने-पढ़ने का बहुमूल्य अवसर प्रदान किया ।"[७०]

अपने समग्र जीवन के दौरान मौलाबक्ष भारतीय संगीत को पुनर्जीवित करने और उसे राष्ट्रीय-आंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करवाने हेतु प्रयत्नशील रहे । मुगल और द्रविड़ संस्कृति के मिश्रण युक्त यह भारतीय संगीत कितना सर्जनात्मक है, यह बताने से मौलाबक्ष कतई नहीं चुकते थे । ब्रिटिश शासन में भारतीय संगीत संस्कृति को विशेष सम्मान प्राप्त करवाने में मौलाबक्ष का महत्वपूर्ण योगदान है । पाश्चात्य संगीत की तुलना में भारतीय संगीत में अधिक गहराई है एवं उसका शास्त्र भी अधिक प्राचीन एवं वैज्ञानिक

है । इस विधान को मौलाबक्ष ने सही अर्थों में अपने प्रयत्नों द्वारा सिद्ध किया था । ऐसे ही एक ऐतिहासिक प्रसंग पर सन् १८७७ में वाईस रॉय, दिल्ली दरबार में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया को भारत के शासन का अधिकार सौपते हुए, उन्हें "कैसरे हिन्द" के खिताब से नवाजा गया था । महाराणी विक्टोरिया के ताजपोशी के इस विशेष अवसर पर देश विदेश से कई प्रतिष्ठित अतिथियों और विभिन्न राज्यों के राजा महाराजाओं को आमंत्रित किया गया था । इस महत्वपूर्ण राजकीय अवसर पर मौलाबक्ष को भी विशेष रूप से उनकी सांगीतिक प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया गया था । वाईस रॉय के इस दिल्ली दरबार में आमंत्रित राजा महाराजा जहाँ जमीन पर खडे थे, और वहाँ मौलाबक्ष स्वयं यूरोपियन आराम कुर्सी पर बिराजमान थे ।"[७१] इससे उस वक्त मौलाबक्ष की ख्याती का अंदाजा लगाया जा सकता है ।

मौलाबक्ष के लिए एक यह सुवर्ण अवसर था, जिसमें वे अपनी सांगीतिक प्रस्तुति द्वारा यह सिद्ध कर सके कि भारतीय संगीत केवल एक मनोरंजन का साधन नहीं है, अपितु वास्तव में वह एक उच्च कला है । मौलाबक्ष इस दरबार में पूरे अभ्यास के साथ आए थे । दरबार में अपनी सांगीतिक प्रस्तुती में मौलाबक्ष ने कई नवीन प्रयोग किये । उन्होंने देशी गायनों, रागों को पाश्चात्य "स्टाफ नोटेशन" में लिखकर एवं उसे बैन्ड द्वारा बजाकर दरबार में उपस्थित सभी श्रोताजनों को मंत्रमुग्ध कर दिया । अपने पूरे अनुभव एवं अभ्यास के द्वारा मौलाबक्ष ने उत्तरी-दक्षिणी और पाश्चात्य् संगीत के सुमधुर मेल से कई सांगीतिक रचनाओं को दरबार में प्रस्तुत करके आमंत्रित सभी देशी विदेशी मेहमानों को आश्चर्य चकित कर दिया । आधुनिक परिपेक्ष्य में विभिन्न सांगीतिक शैलीयों से मिश्र इस तरह के संगीत को "फ्यूजन" के नाम से पहचाना जाता है । अतः यह मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत में इस तरह की आधुनिक संगीत शैली का आविष्कार करने वाले मौलाबक्ष प्रथम भारतीय

कलाकार थे । साथ-साथ मौलाबक्ष ने जल-तरंग, सरस्वती वीणा जैसे वाद्यों पर अपना कौशल्य बताकर सभा मे उपस्थित आमंत्रितों को आश्चर्य चकित कर दिया था ।"[७२] विविध प्रकार के संगीत में उनकी प्रवीणता से प्रभावित होकर मौलाबक्ष को "ऑल राउन्ड म्यूजीशियन" के खिताब से सम्मानित किया गया था । उन्होंने सभा में इस बात की भी वकालत की थी, कि "संगीत देशों कि सीमा से परे हैं । उसे हिन्दू-मुस्लिम-अंग्रेज, आर्य-द्रविड़ या पाश्चात्य किसी भी तरह की सोच उसे नहीं रोक सकती । विविध संस्कृति के भिन्न-भिन्न सांगीतिक प्रकारों को सीखने से अपने संगीत में नावीन्य, रंजकता और बढ़ जाती है; जो समाज में संगीत को लोकप्रियता एवं सुरक्षित रखने का कार्य करती है । इस तरह मौलाबक्ष ने भारतीय संगीत को "अनेकता में एकता" के सुत्र बांधकर भारतीय संगीत को आंतरराष्ट्रीय पहचान एवं सम्मान प्राप्त करवाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कीया।"[७३]

मौलाबक्ष के सांगीतिक अभ्यास से कई और रोचक बातों का पता चलता है । सन् १८५५ से सन् १८९६ तक मौलाबक्ष संगीत के क्षेत्र में एक उत्तम एवं विद्वान संगीतज्ञ के रूप में राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर चुके थे । अन्य राज्यों में भी कई प्रसिद्ध-प्रतिष्ठित घरानेदार उस्तादों की भरमार थी ।

मौलाबक्ष के समकालिन उस समय के प्रतिष्ठित कलाकारों में आग्रा घराने के वरिष्ठ कलाकार घग्गे खुदाबख्श, सवाई रामसिंह (१८३५-१८८०) के दरबार के प्रसिद्ध कलाकार थे । सवाई रामसिंह का दरबार कुछ अन्य प्रतिभावान कलाकारो से भी भरा रहता था । उनके दरबार में अपनी कला की प्रस्तुती करना हर कलाकार अपना गौरव समझता था । उनके दरबार में प्रखर कलाकार नत्थे खान, दिल्ली के तामरस खान, मुबारक अली खान, घग्गे खुदाबख्श, बहरम

खान, मुन्ने खान, रजब अली खान (बीनकार), अमीर खान (सितार वादक) जैसे कई नामी कलाकारों का दबदबा था ।

सवाई रामसिंह के अलावा सवाई माधोसिंह द्वितीय (१८८०-१९२२) ने भी बहुत से कलाकारों को राज्याश्रय दिया हुआ था । उनमें से कुछ प्रमुख जैसे असीतअली खान, इनायत खान (सितार वादक), सनवाफ खान (बीनकार) जमालुद्दीन खान (बीनकार), हाफिज खान (सितार वादक) करामत खान, अलीबख्श, झौबी बख्श, हुसैन खान और जागनाथ (पखावज वादक) इत्यादि । "रंगीले घराने" के स्थापक रमझान खान रंगीले जिनके संगीत की तालीम राजस्थान में इमाम बखश (जोधपुर) में हुई थी, जो कि फैयाज खान के दादाजी थे, जो बहुत प्रसिद्ध कलाकार थे । जयपुर दरबार में भी करीब १५० प्रतिष्ठित कलाकारों को आश्रय मिला था, जिसमें बीनकार उस्ताद रजब अली और मुशरफ खान (असदअली खान, बीनकार के पूर्वज) का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है । शाही राज्य रामपुर में, नवाब कलबी अली खान (१८६४-१८८७) रबाबीये बहादुर हुसैन, इंदौर के महाराजा तुकोजीराव होलकर (१८४३-१८८६) के दरबार में प्रसिद्ध बीनकार बन्दे अली खान (१८२६-१८९०), उदयपुर में झाकीर अल्लाउद्दीन (१८३७-१९२२), प्राचीन और प्रतिष्ठित राज्य ग्वालियर में हददू और हस्सूखान (१८७५ और १८५० क्रम से), हददू खान के पुत्र रहमत खान और उनके शिष्य बालकृष्ण बुआ इचंलकरंजीकर (१८४९-१९२७) एवं राजस्थान उस वक्त कई छोटे-छोटे रजवाड़ों में बटाँ हुआ था, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, गुंड़ी, भरतपुर, जैसलमेर, टोंक, प्रतापगढ़, किसनगढ़ इत्यादि जगहों पर भी कई प्रचलित-विद्वान संगीत कलाकार मौजुद थे ।"[७४]

इस शताब्दी में इन विभिन्न राज्यों के राजा-महाराजाओं की कृपा-दृष्टि एवं उनके संगीत के प्रति प्रेम एवं शौक ने ही हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत को

समाप्त होने से बचाया और संगीत कलाकारों को आश्रय देकर इस प्राचीन भारतीय कला को सुरक्षित रखा। उनके दरबार में एक ही घराने या शैली के कई कलाकरों को कई पीढियों को राज्याश्रय मिला। और उसी आश्रय स्थान या राज्य या क्षेत्र के नाम से रामपुर घराना, आग्रा घराना, ग्वालियर घराना, जयपुर घराना जैसे संगीत के कई घरानें प्रचलित हुए।

१९वीं शताब्दि में इन प्रखर, नामी उस्तादों के बीच मौलाबक्ष की कीर्ति भी कुछ कम नहीं थी। कई शाही राज-परिवार, बादशाहों के यहाँ मौलाबक्ष को उनकि सांगीतिक विद्वता के कारण आमंत्रित किया जाता था। विशेष बात है कि मौलाबक्ष कोई घरानेदार कलाकार नहीं थे। फिर भी अपने अथक परिश्रम के बल पर जीवनकाल में ही उपर्युक्त प्रचलित घरानों के बीच में "मौलाबक्ष घराना" या "भिवानी घराना" के नाम से एक नई सांगीतिक परंपरा शुरू करने में मौलाबक्ष सफल रहे थे।

शायद यही कारण था कि बड़ौदा में रहते मौलाबक्ष ने कई नामी उस्तादों को बड़ौदा में स्थायी होने से दूर रखा था। बड़ौदा राज्य ने उस वक्त मौलाबक्ष जैसी शख्सियत को पनपने का मौका दिया। संगीतकार मौलाबक्ष को कई आविष्कारों, प्रयोगों के लिए महाराजा से समर्थन मिला। वे "कलावंत कारखाने" के प्रमुख नियुक्त हो चुके थे। दीवान माधवराव के मित्र ऐसे शक्तिशाली व्यक्तित्व मौलाबक्ष ने "घराना" जैसे शब्द का बहिष्कार करके अपने नाम से राज घराना शुरू किया था। उस समय के राज्य के प्रमुख अधिकारी तथा अंग्रेज उन्हें "प्रोफेसर मौलाबक्ष" के नाम से जानते थे। गायनशाला में पढ़ाना एवं नोटेशन का इस्तेमाल करने के आग्रह से कई मेहमान गायकों को दूर रखने में मौलाबक्ष कामयाब हुए थे। मौलाबक्ष की भरावदार मुखमुद्रा, उँचा और पहलवानी शरीर, घुमावदार मूछें, राजवी पोशाक, ठाट-बाट एवं जिद्दी स्वभाव के समक्ष कई

राजा-महाराजा भी उनसे कम नजर आते थे। संभवतः इन्ही वजह से बड़ौदा में विविध घरानों के कलाकार आमंत्रित तो किये जाते थे, किन्तु अन्य राज्यों की तरह बड़ौदा अंत तक कभी भी किसी एक घराने का गढ़ नहीं बना।

उल्लेखनिय है कि उस वक्त मौलाबक्ष के अलावा देश भर में कई विद्वान मुसलमान कलाकार थे जिन्होंने केवल खुद को और अपने घरानों के सदस्यों को ही संगीत क्षेत्र में पारंगत करने एवं ख्याति अर्जित करवाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। मौलाबक्ष देश के एक मात्र ऐसे प्रतिभावान मुसलमान कलाकार थे, जिन्होंने अपने स्वार्थ को त्यागकर समाज में संगीत शिक्षा द्वारा संगीत को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था। जहाँ मुस्लिम संगीतकारो को बड़ौदा से बाहर लोग अलग नजरों से देखते थे, उसी समय बड़ौदा में मौलाबक्ष ने संगीत के उत्थान, उत्तेजना हेतु संगीत का साम्राज्य बनाने का बीड़ा उठाया था। अपनी संगीत की रचनाओ में आध्यात्मिकता, भक्ति, संस्कार सिंचन एवं राष्ट्रीय भावना बढ़ाने वाले विषयों का समावेश करके लोगों को संगीत के प्रति आकर्षित किया था।

मौलाबक्ष द्वारा संत कवि नरसिंह मेहता, प्रेमानंद, मीराबाई, सुन्दर, नानक, शंकराचार्य जैसे हिन्दू संत, कवि, भक्तों के पदों-काव्यों को स्वर-बद्ध करके समाज में सगीत को आदर-सम्मान प्राप्त करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस तरह भक्ति, आध्यात्म, राष्ट्रीयता, संस्कार, इत्यादि माध्यम से संगीत के उत्थान में मौलाबक्ष का योगदान अविस्मरणीय है। उल्लेखनिय है कि इस दिशा में पं.पलुस्कर जी और पं. भातखंडे जी के प्रयत्न मौलाबक्ष के कई दशकों के बाद के हैं।

मौलाबक्ष ने पूरी जिदंगी राजा-महाराजाओं के दरबार में संगीत की प्रस्तुति द्वारा उनका मनोरंजन किया। दरबारी कलाकारों में प्रमुख स्थान, लोकप्रियता,

ऐशोआराम सबकुछ मिला; फिर भी अभिमान से दुर स्वाभिमानी व दयालु स्वभाव के मौलाबक्ष ने दरबार से बाहर सामान्य लोगों को भी संगीत सुनाया और सिखाया ।

मौलाबक्ष के वंशजों द्वारा बताई गईं दो कहानियों द्वारा उनके भावनाशील स्वभाव का पता लगता है । एक घटना के अनुसार, एक दिन मौलाबक्ष दरबार में कार्यक्रम करके देर रात घर लौटे; तब वहाँ का नौकर उनकी राह देख रहा था । नौकर ने हाथी परसे वीणा उतारते ही बड़ी उत्सुकता से मौलाबक्ष जी से पूछा "यह कैसे बजती है, यह में जानना चाहता हूँ" तब बड़े थके हुए मौलाबक्ष जी ने उस नौकर को वीणा बजाकर और गाना गाकर सुनाया । यह बात जब नौकर ने दूसरे दिन अपने मालिक को बताई, तब उन्होंने मौलाबक्ष जी से पुछा "रात में आराम किया कि नहीं?" मौलाबक्ष ने बताया "दरबार में बार-बार कहने से उन्होंने गाया-बजाया था । वे बहुत थक चुके थे, पर जब घर लौटने के बाद इस भोले और गरीब नौकर ने पूछा, तब उनसे रहा नही गया, और उन्होंने सारी रात उस नौकर के लिए गाया बजाया और वीणा के बारे में बताया । जो-जो सवाल नौकर ने पूछे सबका जवाब दिया । दरबार की शोहरत के सामने इस नौकर के पास कुछ भी नहीं था पर दयालु मौलाबक्ष जी को लगा कि इस गरीब आदमी को ना कहना खुदा को नाराज करने के समान होगा । इस सोच से उन्होंने सारी रात नौकर को संगीत सुनाया ।

दूसरी बताई गई कहानी के अनुसार, बड़ौदा में एक उँट-चालक ने मौलाबक्ष की मृत्यु के पश्चात, अपने बेटे के पास मौलाबक्ष के बारे में बात करते समय इतना शोक जताया जैसे कि उसकी मौलाबक्ष से पूरानी जान पहचान थी । पर पूछने पर यह मालूम हुआ कि सिर्फ एक ही बार उसकी मौलाबक्ष जी से मुलाकात हुई थी । मौलाबक्ष ने उसको बड़े खुले दिल से संगीत के बारे में इस

तरह समझाया था कि उँट चालक मौलाबक्ष से बहुत प्रभावित हुआ था । महान हस्ती होते हुए भी मौलाबक्ष कितने दयालू इन्सान थे, इस बात को वह कभी नही भुल सका । ऐसी कितनी ही बाते हैं, जिनसे पता चलता है कि मौलाबक्ष को जीवन की सुन्दरता, सादगी से कितना प्रेम, आदर था । इस प्रकार के व्यवहार ने मौलाबक्ष को एक कलाकार के साथ-साथ इन्सानियत में भी महान बना दिया था।"[७५]

मौलाबक्ष एक ऐसे कलाकार हो गये, जिन्होंने खुद की कला आनेवाली पीढ़ी को समर्पित कर दी । बड़ौदा के इस प्रखर विद्वान कलाकार संगीत रत्न खान साहब मौलाबक्ष का १० जुलाई १८९६ को स्वर्गवास हुआ । तब उन्हें शासकीय सम्मान दिया गया था । शिक्षा विभाग की वार्षिक रिपोर्ट में मौलाबक्ष के देहान्त को भारतीय शास्त्रीय संगीत की बहुत बड़ी क्षति बताया गया था ।"[७६] लेकिन उनके बाद उनके दोनों पुत्रों ने अपने पिता द्वारा मिली संगीत की पुश्तैनी विरासत को सहेजकर, संजोकर जिम्मेदारी से आगे बढ़ाया । मौलाबक्ष ने तीन शादियाँ की थीं । उनकी प्रथम पत्नी कासीम बी प्रसिद्ध बादशाह टीपू सुल्तान की वंशज थीं । उनसे उन्हें एक पुत्र था, जिसका नाम मुर्तजा खान था । दूसरी बीवी का नाम अमीर बीबी था, जिनके पुत्र का नाम अल्लाउद्दीन खान था तथा तीसरी बीवी का नाम तेज़ा था । वह सौराष्ट्र के ठाकोर परिवार से थी । वह निसंतान थी । मौलाबक्ष के बड़े पुत्र "मुर्तजा पठान" जो दादूमियाँ के नाम से जाने जाते थे, उनको सन् १८८६ में कलावन्त खाते में भर्ती किया गया । मुर्तजा पठान ने गायन शाला में मौलाबक्ष के साथ सहायक अध्यापक के रूप में भी अपनी सेवाएँ दीं । मुर्तजा पठान अपने पिताजी की तरह दक्षिण हिंदुस्तानी और उत्तर हिंदुस्तानी दोनों संगीत में निपुण थे । उस्ताद अब्दुल करीम खान बड़ौदा दरबार में अपने कार्यकाल के दौरान मौलाबक्ष खानदान के मुर्तजा खान की गायकी से अत्यंत प्रभावित हुए थे । कर्णाटकी शैली से विभिन्न प्रकार के

“सरगम” गाने की विद्वत्ता मुर्तजा खान की अपनी एक अनोखी खूबी थी । १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हजरत इनायत खान के परिवारजनों ने जब उस्ताद अब्दुल करीम खान का ग्रामोफोन रेकॉर्ड सुना तो वे आश्चर्य चकित रह गये, क्योंकि खान साहब की गायकी पर मुर्तजा खान पठान की शैली के “सरगम” गायन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा था ।”[७७] मौलाबक्ष के बाद मुर्तजाखान को विद्यालय का प्रमुख पद मिला । मौलाबक्ष के द्वितीय पुत्र डॉ.अल्लाउद्दीन खान को सन् १८९७ में इग्लैंड से वापस आने के बाद बैन्ड मास्टर के पद पर नियुक्त किया गया था । पाटण, नवसारी और अमरेली में स्थापित गायनशालाओं की तीनों शाखाओं के संचालन कि जिम्मेदारी को भी डॉ.अल्लाउद्दीन खान ने भलिभाँति निभाया । “कलावन्त कारखाने” का अधीक्षक के रुप में भी उन्होनें सराहनिय कार्य किया और बड़ौदा को “कला नगरी” बनाने मे अपना अहम् योगदान प्रदान किया । प्रोफेसर मौलाबक्ष के पौत्र ओर शिष्य इनायत खान ने अपने संगीत का पेशा अगस्त सन् १८९५ में गायकवाड़ के दरबार में “गणेश स्तुति” की प्रस्तुति से शुरू किया था । उनकी संगीत प्रतिभा से खुश होकर महाराजा द्वारा उन्हें ५/- रूपये की छात्रवृत्ति भी प्रदान की गई थी ।”[७८] इस छोटी सी शुरुआत के बाद २०वीं शताब्दी के शुरू में इनायत खान एक लोकप्रिय संगीतज्ञ तथा प्रमुख सूफी संत के रूप में प्रसिद्ध हुए थे । “आधुनिक तानसेन” की उपमा से प्रख्यात इनायत खान ने भारत, नेपाल, एवं यूरोप में भारतीय शास्त्रीय संगीत को खूब लोकप्रिय बनाया । अपने आध्यात्मिक सूफी भाषण के पहले इनायत खान सांगीतिक प्रस्तुति अवश्य देते थे । इनायत खान को भारतीय संगीत का सर्वप्रथम राजदूत भी कहा जाता है, जिन्होंने पाश्चात्य देशों के लोगों को भारतीय संगीत की आध्यात्मिकता का ज्ञान करवाया और भारतीय संगीत को विदेशों में प्रचलित किया ।

मौलाबक्ष के पुत्रों ने, उनके द्वारा स्थापित संगीत विद्यालय की गुणवत्ता में कोई कमी आने नहीं दी । पिता की तरह ही संगीत में प्रयोगशीलता व नावीन्य इत्यादि के लिए दोनों ही अग्रेसर रहते थे । २०वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक बड़ौदा संगीत विद्यालय अब हिन्दुस्तानी संगीत का एक बड़ा एवं प्रधान केन्द्र बन चुका था । संगीत विद्यालय में मौलाबक्ष और उनके परिवार के अलावा अब्दुल करीम खान, नासर खान, फैय्याज खान, उस्मान खान (तबला), गणपतराव वसईकर (शहनाई), शंकरराव गायकवाड (शहनाई), रजाहुसैन (दिलरुबा), भीकन खान (सितार), इत्यादि कलावन्तों ने भी संगीत शिक्षक के रुप में गायन शाला में अपनी सेवाएँ प्रदान की और गायनशाला को उच्च शिखर पर बिराजमान होने में अपना योगदान दीया । गान्धर्व महाविद्यालय के प्रिन्सिपल पंडित पलुस्कर और शास्त्रकार पंडित भातखंडे जी को भी स्कूल के परीक्षक एवं सांगीतिक सलाह-सूचन हेतु निष्णात के तौर पर आमंत्रित किया जाता था ।

मौलाबक्ष के एक और कार्य की, जिससे संगीत जगत शायद ही परिचित होगा, मौलाबक्ष संगीतकार के साथ-साथ एक देश प्रेमी क्रांतिकारी भी रह चुके थे । युवा मौलाबक्ष जब गुरु की खोज में ग्वालियर गए थे, तब देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के प्रसिद्ध सेना नायक तात्या टोपे के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरोध में देश की आजादी के लिए किये गये विद्रोह में भी मौलाबक्ष ने उनका साथ दिया था ।"[७९]

समग्र देश में मौलाबक्ष जहाँ कहीं भी गए, वहाँ उन्हें आदर भाव से सम्मानित किया गया । मौलाबक्ष की सांगीतिक उपलब्धियों से प्रभावित महाराजा सयाजीराव द्वारा उन्हें विशेष सम्मान एवं अधिकार प्रदान किये गए थे । दरबार के प्रतिष्ठित "नौ रत्नों" में मौलाबक्ष को शामिल किया गया । मैसूर दरबार में भी मौलाबक्ष को "संगीत रत्न" की विशेष उपाधि से सम्मानित किया गया था ।"[८०]

उल्लेखनिय है कि जब सन् १८९३ में शिकागो में कोलंबस द्वारा अमेरिका खंड को खोजे जाने की ४००वीं वर्षगाँठ पर एक विश्व परिषद का आयोजन किया गया था। उसमें विश्व के हर एक कोने से विविध विषयों के विद्वानों को आमंत्रित किया गया था। जैसा कि हमें विदित है कि इस विश्व परिषद में भारत वर्ष से स्वामी विवेकानंद जी को आमंत्रित किया गया था,और उनके द्वारा हिन्दू धर्म और योग के विषय पर दिया गया अद्‌भुत प्रवचन, हमें आज भी गर्व की अनुभुति करवाता है। ठीक उसी प्रकार इस विश्व परिषद में आयोजित "विश्व संगीत प्रदर्शनी" में भारतीय संगीत की प्रस्तुतीकरण एवं उसके प्रतिनिधि के रूप में उस्ताद मौलाबक्ष को भी आमंत्रित किया गया था। इससे हमें ज्ञात होता है कि न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, परंतु आंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मौलाबक्ष की लोकप्रियता व ख्याति प्रस्थापित हो चुकी थी।"[८१]

सन्दर्भ

१. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega.p.3.

२. वही, पृ.१०, ११।

३. वही, पृ.१२ ।

४. वही, पृ.१३, १४ ।

५. वही, पृ.१४ ।

६. वही, पृ.१५ ।

७. वही, पृ.११ ।

८. वही. पृ.१२ ।

९. **https://wahiduddin.net/mv2/bio/Biography_3.htm**

१०. देसाई, वि.शि. (१९२८). उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत नो इतिहास, श्री सयाजी साहित्यमाला -पुष्प १४५ मुं, हंसा महेता पुस्तकालय, दि महाराजा सयाजीराव युनिर्वसिटी ऑफ बरोड़ा.पृ.११३ ।

११. वही. पृ.११३ ।

१२. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.p.24-31.

१३. देसाई, वि शि. (१९२८). उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत नो इतिहास, पृ.११४ ।

१४. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.p.26-37.

१५. मौलाबक्ष के वंशज़ एस. एम.मेहमूद खान से ई-मेल द्वारा प्राप्त जानकारी अनुसार, होलेंड, दिनांक- २३- ०४-२०१६ ।

१६. **https://wahiduddin.net/mv2/bio/Biography 3.htm**

१७. वही ।

१८. Bakhle, J. (2005). Two men and music: Nationalism in the making of an Indian classical tradition. Oxford University Press on Demand. p. 39.

१९. वही, पृ.३९ ।

२०. Tagore, s.m. (1882).Hindu music from various authors, Calcutta: rajah Comm.sourindro mohun Tagore. p.p.389-97.

२१. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.24.

२२. **https://wahiduddin.net/mv2/bio/Biography_3.htm**

२३. Pandya, t.r. (1915).education in baroda.bombay.p.p. 136-137.

२४. Annual report. (1886).annual report on the administration of Baroda state of 1885-86, h.m.liabrary.baroda.p.118.

२५. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८८८).संगीतानुभव, बड़ौदा. पृ.६ ।

२६. Pandya, t.r. (1915).education in baroda.bombay.p.p. 137.

२७. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८८८).संगीतानुभव, बड़ौदा. पृ.२ ।

२८. List of filesin the records of the huzur political office 1886-87 to 1888-1889 and 1901, abhilekhagar, p.p.-11, 12, and 13.

२९. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८८८).संगीतानुभव, बड़ौदा. पृ.६ ।

३०. Bakhle, J. (2005). Two men and music .p.41.

३१. Annual report. (1893).annual report on the administration of Baroda state Of, h.m.liabrary.baroda.p.p.no-123-24.

३२. Bakhle, J. (2005). Two men and music. p.42.

३३. वही, पृ.४३ ।

३४. वही, पृ.४३ ।

३५. मुर्तजाखान पठान (१८९९), प्रथम पुस्तक भाग १, पृ. २ ।

३६. Bakhle, J. (2005). Two men and music: p. 44.

३७. वही, पृ.४५ ।

३८. "वड़ोदरा राज्य मां संगीत शिक्षण. (१९४१-४२), प्रकाशन पत्रिका अंक-१९, श्री सयाजीसाहित्यमाला, हंसा महेता पुस्तकालय, दि महाराजा सयाजीराव युनिर्वसिटी ऑफ बरोड़ा.पृष्ठ.६ ।

३९. Bakhle, J. (2005). Two men and music: p. 68.

४०. Upadhyay, R. (2015).Baroda:Pre-modern basis and the modernizing Project Of sir sayajirao III, Dept.of history, Faculty of arts, The maharaja Sayajirao University of Baroda. p. 276.

४१. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay c.1864- 1937, (f, joep bor, Ed.) Hindustani music thirteen to twentieth centuries. p.p.316, 317.

४२. वही, पृ.३१७-३१९ ।

४३. Bakhle, J. (2005). Two men and music: p.p.66-67.

४४. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay c.1864- 1937, (f, joep bor, Ed.) Hindustani music thirteen to twentieth centuries. p.315.

४५. शुक्ल, हरकान्त. (१९७८).गुजरात नुं संगीत अने संगीतकारों, माहिती खातु-गुजरात सरकार.पृ.३४ ।

४६. दातार, शैला. (१९९५), देवगंर्धव, आवृत्ती चौथी, राजहंस प्रकाशन, पुणे, पृ.५, ६, १०, २० ।

४७. Bakhle j, (2005), Two Man and Music, p.44.

४८. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay c.1864- 1937, (f, joep bor, Ed.) Hindustani music thirteen to twentieth centuries. p.321.

४९. वही, पृ.३२५ ।

५०. वही, पृ.३२५ ।

५१. Bakhle j, (2005), Two Man and Music, p.35.

५२. वही, पृ.४० ।

५३. Mehta, r.c. (2008). The musical heritage of Baroda: a brief note, (s.Gangopadhyay, Ed.)Baroda: a tale of two cities, Baroda, p. 35.

५४. शुक्ल, हरकान्त. (१९७८).गुजरातनुं संगीत अने संगीतकारों, माहिती खातु–गुजरात सरकार.पृ.३४ ।

५५. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay c.1864- 1937, p.315.

५६. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.183.

५७. "श्रीमन्नृसिंहाचार्यजी शताब्दी-स्मृति-ग्रंथ. (१९५४), प्रकाशकः हिरालाल मो.महेता, विश्ववंद्य–उद्यान, कारेलीबाग, वडोदरा. पृ.१६७ ।

५८. शाह मुळजीभाई, (१९३७) भारत ना संगीतकारों, भाग-प्रथम, प्रकाशक–राजेन्द्र अेम. शाह, अमदावाद.पृष्ठ नं.३७, ३८ ।

५९. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८९१).बालासंगीतमाला, बड़ौदा. पृ.२ ।

६०. वही, पृ.१-२ ।

६१. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८८८).संगीतानुभव, बड़ौदा. पृ.७ ।

६२. पुरषोत्तम ना. गांधी. (१९३९).गुजरात मां संगीत नुं पुनरुज्जीवन (सम्पादित), नवजीवन प्रकाशन मंदीर, अमदावाद.पृ.२७०, २७१ ।

६३. Bakhle j, (2005), Two Man and Music, p.40.

६४. खान अल्लाउद्दीन मौलाबक्ष. (१९१३).बाला संगीत माला–मराठी व गुजराती पुस्तक पहेलां, पृ.१, २ ।

६५. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८९२).संगीतानुसार छंदोमंजरी, बड़ौदा पृ. १, २, ३ ।

६६. खान, मौलाबक्ष घिसे. (१८९३)."नरसिंह महेता संगीत मामेरुं, पृ. ३, ४ ।

६७. Bakhle j, (2005), Two Man and Music, p.44.

६८. वही, पृ.४५-४६ ।

६९. वही, पृ.३८ ।

७०. वही, पृ.४३ ।

७१. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.108.

७२. देसाई, वि.शि. (१९२८).उत्तर हिन्दुस्तानी संगीतनो इतिहास, पृ.११५ ।

७३. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) NewLebanon: omega. p.p.19- 20.

७४. वही, पृ.१७९ ।

७५. मौलाबक्ष के वंशज नूर महंमद और हरुन्नीसा खानिम मौलाबक्ष से प्रत्यक्ष मूलाकात द्वारा प्राप्त जानकारी अनुसार, मौलाबक्ष निवास, याकुतपूरा, वड़ोदरा दिनांक-१२-२- २०१६ ।

७६. Bakhle j, (2005), Two Man and Music, p.p.43-44.

७७. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.18.

७८. Bakhle j, (2005), Two Man and Music, p.44.

७९. मौलाबक्ष के वंशज़ एस. एम.मेहमूद खान से ई-मेल द्वारा प्राप्त जानकारी अनुसार, होलेंड, दिनांक- १२- ०३-२०१६ ।

८०. Mahmood khan, s.a.-m. (2001). a pearl in wine. (p.z.khan, Ed.) New Lebanon: omega. p.27.

८१. http://www.academia.edu/8819991/p.24.